अमर-हिन्दू

लेखक—

पं० आदित्यकुमार वाजपेयी

एम० ए०

व्यवस्थापक सम्पादक "त्रैसाहिक अरुणोदय"

प्रथमवार } संवत् २००७ वि० { मूल्य दो रुपया

प्रकाशक—

अरुणोदय प्रकाशन इटावा

प्रकाशक—

पं० आदित्यकुमार वाजपेयी

अध्यक्ष—अरुणोदय प्रकाशन इटावा।

मुद्रक—

श्री आदित्यकुमार वाजपेयी

अध्यक्ष—अरुणोदय मुद्रणालय इटावा।

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये ।"

।

गुरुदेव

अनन्त श्री विभूषित

श्री जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य

श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती

ज्योतिष्पीठाधीश्वर महाराज

के

श्री चरणों में

अमर-हिन्दू

★ दो शब्द ★

आज "हिन्दू" शब्द के सम्बन्ध में सबसे अधिक अज्ञान व भ्रम फैला हुआ है। कोई इसे धर्म बतलाता है तो कोई इसे सम्प्रदाय कहता है। हिन्दू संस्कृति को ओछा, संकीर्ण, व पागलपन कहा जा रहा है। राजनीति में तो हिन्दू शब्द अछूत बन गया है और अपने ही कुछ लोग इसे जड़ मूल से उखाड़ने को पागल हो उठे हैं। हिन्दू पर आक्षेप करना, उसकी आलोचना करना, या हिन्दू समाज जिन पर आश्रित है उन्हीं आधार भूत जड़ों पर आघात करना आजकल की राष्ट्रीयता है। और ऐसा करना है भी सबसे अधिक आसान, क्योंकि हजार वर्ष की दासता का सबसे घातक प्रभाव हिन्दू पर ही तो हुआ है, जो अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर इतना आत्मविस्मृत हो गया है कि उसे शत्रु मित्र की पहिचान नहीं। वह उसी हाथ को चूमता है जो उस पर सबसे तीखा प्रहार करता है। अपने ही घर में जहां कण-कण भूमि उसके ही पूर्वजों के रक्त से सिंची पड़ी है और जहां उसी के पूर्वजों का यशोगान आज भी गूंज रहा है, हिन्दू

अपने को अनाथ पाता है। उस भूखण्ड में जो उसकी पित्र भूमि, पुण्य भूमि, और मात्रभूमि है तथा जिसका नाम भी उसीके नाम पर पड़ा है, हिन्दू उपेक्षित है, लांछित है, और उत्पीड़ित है। वह यवन काल में भी बन्दी था, वह अंग्रेजी शासन में भी बन्दी था, और आज भी वह अपने को बन्दी ही पाता है। वह न अपने त्योहार मना सकता है और न अपने पूर्वजों के प्रति उचित सम्मान ही प्रदर्शित कर सकता है। उसकी भावना, उसका धार्मिक विश्वास और उच्चादर्श सभी "साम्प्रदायकता व अन्ध विश्वास माना जाकर निषिद्ध है। भारत का एक भाग काटा जाकर साम्प्रदायकता ही नहीं वल्कि अराष्ट्रीयता का गढ़ बनने को दे दिया गया, परन्तु हिन्दू के लिये कोई स्थान नहीं। गुन्डों के अत्याचार से बचने के लिये लाखों हिन्दू, शेष भारत में आश्रय पाने को आते हैं पर उन्हें समझौते के नाम पर वापस खदेड़ दिया जाताहै, गुन्डों की दया पर रहने, मरने, अथवा धर्म परिवर्तन करने के लिये। भारत में उनके लिये स्थान नहीं जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिये सभी कुछ दिया वल्कि स्थान है उनके लिये जिन्होंने भारत को कभी अपना नहीं समझा और जो भारत को आज भी अपना नहीं समझ रहे हैं। उनके तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। पाकिस्तान उनका घरहै और शेष भारत उनके आराम करने की धर्मशाला है। हिन्दू की यह दुरावस्था इसलिये नहीं कि वह वलहीन है या उसको तेज लुप्त हो गया है। इसलिये भी नहीं कि वह आत्म-वलिदान को भूल गया है, क्यों

कि अभी उसी के बलिदानों ने अंग्रेजों के जबड़ों के बीच से स्वतन्त्रता को छीना है। उसकी दुरावस्था का एक मात्र कारण यही है कि उसकी आंखों पर भ्रान्त राष्ट्रीयता का इतना मोटा पर्दा डाल दिया गया है कि वह कुछ भी नहीं देख सकता और विनाश के मार्ग पर घसीटा जा रहा है। उसकी नशों में आज भी भगवान राम का रक्त बह रहा है। भगवान कृष्ण का कर्मयोग व विक्रमादित्यों का अपूर्व तेज, उसके अन्दर आज भी भरा है और आज भी है उसके अन्दर चाणक्य की कूटनीति, प्रताप की प्रणवीरता, और शिवाजी की जागरुकता। उसके हृदय में राष्ट्रीयता का वह अग्निकुण्ड आज भी प्रज्वलित है जिसने युग २ में असंख्य श्रोतों में फूट कर राष्ट्र का पथप्रदर्शन व राष्ट्र शत्रुओं का विनाश किया है, और है उसकी श्वास-प्रस्वाश में संसार भर को झकझोर डालने की अपूर्व क्षमता। परंतु हिन्दू भूल गया है अपने रूप को, उसे विस्मरण हो गया है अपना अतीत और वह नहीं देखना चाहता अपना उज्वल भविष्य। बस यही एक आत्मविस्मरण का ऐसा रोग है जो हिन्दू को समय २ पर पकड़ लेता है और तभी वह हो जाता है निस्प्रभ, निशक्रिय और निःचेतन और तभी बंध जाती है उसकी मात्र भूमि बन्धन में। ऐसे समय में उसे चाहिये कोई जामवन्त जो अपने वल को भूले हुये इस हनुमान को उनके वल का स्मरण दिला सके, उसे चाहिये कोई कृष्ण जो इस मोहान्ध अर्जुन को कर्तव्य में लगा सके, और चाहिये कोई चाणक्य अथवा समर्थ रामदास, जो हिन्दू को चन्द्रगुप्त व

शिवाजी के समान राष्ट्रीयता का मूर्तिमान रूप बना सके। फिर हिन्दू सभी कुछ करने में समर्थ है। वह सागर को एक ही छलांग में पार करके आततताइयों के गढ़ को तोड़ सकता है, वह अनय अत्याचार मिटाने, और धर्म संस्थापनार्थ, बड़ी २ सेनाओं को मसल सकता है और वह एक ही झटके में उखाड़ सकता है बड़े २ साम्राज्य।

हिन्दू के सामने स्वर्णिम अतीत रख कर वर्तमान काल की मोहान्धता को छिन्न भिन्न कर उसे उज्जवल भविष्य के निर्माण में लगा देना, यही "अमर हिन्दू" का उद्देश्य है। जिस दिन हिन्दू विभिन्न वादों को छोड़कर हिन्दुत्व के राष्ट्रीय सूत्र में बंध कर उठेगा, तो यह लकड़ी के पैरों वाले स्वयं-भू कलयुगी देवता जिनकी हिमालय के समान भारी भूलों, रुग्ण सड़ी गली नीति - और भ्रष्ट मनोवृत्ति से भारत का अस्थिपंजर ही चरमरा उठा है, क्षण भर में उच्चासन से नीचे लुढ़क पड़ेंगे। और बिखर जायगा भ्रस्टाचार, भुखमरी और गरीबी से निरन्तर घुनता हुआ ढांचा। फिर युग २ के संचित प्रकाश पुंज से मंडित अपने चारो ओर समृद्धि, वैभव और विजयों का अटूट तारतम्य बिखेरता हुआ, होगा, हिन्दू राष्ट्र का उदय, और उसकी ही छत्र छाया में होगी, हिन्दू के घर हिन्दुस्थान में, सच्चे राम राज्य की स्थापना।"

अरुणोदय कार्यालय
इटावा
मार्च १९५१

आदित्यकुमार बाजपेयी
एम० ए०

१

राष्ट्र की व्याख्या अत्यन्त कठिन है क्यों कि स्थूल भौतिक पदार्थ का तो रूप रंग होता है जिसका वर्णन होना संभव है परंतु राष्ट्र तो स्थूल भौतिक पदार्थ न होकर एक भावना या एक पवित्र कल्पना है जिसको समझा जा सकता है परन्तु शब्दों में जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिन्होंने इसको समझा उन्होंने इसके सामने अपने प्राणों को भी तुच्छ माना है और जो इसे समझ सकने में ही असमर्थ रहे हैं उनके हाथों में पड़ कर इसकी अच्छी तरह छीछा लेथन व विडम्बना ही हुई है। यही कारण है कि राष्ट्र की अनेकों परिभाषायें की गईं। भूखण्ड, संस्कृति, सभ्यता, भाषा और धर्म को सभी ने राष्ट्र के निर्माण में आवश्यक तत्व माना है परन्तु कौन कितना महत्वपूर्ण है इसमें गहरा मतभेद है। किसी में संस्कृति व भाषा की एकता पर जोर दिया गया है तो किसी ने धर्म की एकता को प्रधानता दी है। कुछ लोगों की दृष्टि में देश और राष्ट्र दोनों का एक ही अर्थ

हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने राज्य और राष्ट्र दोनों को मिला डाला है। मतभेद का अन्त यहीं नहीं होता। जहाँ एक पक्ष ऐसा है जो राष्ट्र के निर्माण व विकास को प्राकृतिक तथा सनातन मानता है वहाँ दूसरे पक्ष का मत है कि किसी भी भूखण्ड पर बसे मनुष्यों को मिलाकर एक राष्ट्र निर्मित होजाता है।

परन्तु यदि ध्यान से देखा जावे तो राष्ट्र मनुष्य की भांति भौतिक होने के साथ साथ चेतन भी है। मनुष्य की भांति उसके बाहरी शरीर होता है और उसके अन्दर आत्मा की भांति कोई चेतनता प्रदान करने वाली दिव्य शक्ति भी होती है। भूखण्ड, धर्म, और भाषा राष्ट्र के आवश्यक अंग हैं। परन्तु यह केवल उसके बाहरी शरीर का ही निर्माण करते हैं। अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व जो इस जड़ रूप में चेतनता उत्पन्न करता है वह संस्कृति है। इसी संस्कृति पर प्रत्येक राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर रहता है और यही उसे दूसरे राष्ट्रों से प्रथक भी करता है। भौगोलिक परिधि या रुकावटें अथवा धार्मिक विभिन्नताएं राष्ट्रों की प्रथकता का मूल कारण नहीं बल्कि यह संस्कृति की विभिन्नता है जो राष्ट्रों को एक दूसरे से प्रथक करती है। नार्वे; स्वीडन; स्पेन; पुर्तगाल; इटली आदि ऐसे उदाहरण हैं जहाँ प्रकृतिक कारणों से विभिन्नता है--परन्तु फ्राँस व जर्मनी में तो कोई प्राकृतिक रुकावट नहीं, रूस व फारस में, और बेलजियम व हालैन्ड में भी प्राकृतिक रुकावट नहीं फिर भी वह भिन्न २ राष्ट्र हैं। इसके अलावा इंगलैन्ड स्काटलैन्ड में तथा भारत के उत्तर

व दक्षिणी दोनों भागों के बीच पहाड़ होते हुयेभी चूंकि संस्कृति की ऐकता है इसलिये इन देशों में दो राष्ट्र न होकर एक ही राष्ट्र है। धर्म का प्रश्न भी राष्ट्र के निर्माण या उसके विघटन में इतना महत्वपूर्ण नहीं क्योंकि जहाँ ऐसे उदाहरण हैं कि एक धर्म को मानने वाले राष्ट्र रूप में अलग २ हैं वहां अलग २ धर्म वालों द्वारा एक राष्ट्र होने के भी उदाहरण हैं। एक धर्म इस्लाम को मानते हुयें भी तुर्की-अफगान-इरान-मिश्र आदि देश भिन्न २ राष्ट्र हैं। एक धर्म ईसाई होने पर भी फ्रांस-स्पेन-जर्मनी-इटली आदि अलग २ राष्ट्र हैं इसके विपरीत चीन में मुसलमान व बौद्ध दो धर्म हैं तथा रूस में भी भिन्न २ धर्म हैं परन्तु राष्ट्र एक ही चीनी या रूसी है! इस भिन्नता व ऐकता का कारण संस्कृतिक ऐकता व भिन्नता है! धर्म एक होने पर भी चूंकि संस्कृति भिन्न है, इसलिये-इस्लाम व ईसाई धर्म के अन्तर्गत इतने राष्ट्र हैं और चीन व रूस जहां संस्कृति की ऐकता है वहां धर्मों की प्रथकता को भी जोड़कर राष्ट्र एक ही बन गया। जब तक धर्म किसी देश की संस्कृति से छेड़ छाड़ नहीं करता तब तक संघर्ष नहीं उठता परन्तु जब कोई धर्म किसी भी देश की प्रचिलित संस्कृति से विपरीत कोई नवीन संस्कृति उत्पन्न करना चाहता है तो धर्म और संस्कृति में संघर्ष होना अवश्यम्भावी है। राष्ट्र के साथ भाषा का गहरा सम्बन्ध है। जैसे भाषा के द्वारा मनुष्य अपने चेतन स्वरूप को व्यक्त करता है वैसे ही राष्ट्रों की चेतनाशक्ति संस्कृति को व्यक्त करने का माध्यम राष्ट्रभाषा ही है। इसीलिये संस्कृतिक

ऐकता व भिन्नता–भाषा की ऐकता व भिन्नता में प्रगट होती है। परन्तु भाषा भी दो प्रकार की होती है। एक साधारण बोल चाल की भाषा और एक संस्कृति को व्यक्त करने वाली भाषा! एक राष्ट्र के अन्दर बोलने चालने की भाषाएं अनेकों हो सकती हैं परंतु राष्ट्र भाषा एकही होती है।

राष्ट्र का सबसे आवश्यक अंग उसकी संस्कृति है यदि इसे राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी कहा जावे तो भी अनुचित नहीं क्यों कि इस पर ही राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर रहताहै। इसके रहते हुये राष्ट्र चेतन व इससे विहीन होजाने पर राष्ट्र मरुभूमिके तुल्य बन जाताहै। भौगोलिक भूखण्ड का सम्बन्ध संस्कृति से वैसा ही है जैसे आत्मा व शरीर का। शरीर चाहे जितना जर्जरित होजावे वह हड्डियों का ढांचा मात्र ही चाहे रह जावे पर जब तक उसमें आत्मा रहती है तब तक वह जीवित माना जाता है और आत्मा के रहते शरीर पुनः स्वस्थ हो सकता है; परन्तु यदि आत्मा ही शरीर को छोड़ दे तो चाहे वह कितना ही मोटा क्यों न हो उसमें गलाव उत्पन्न हो जाता है। इसी भांति भौगोलिक सीमाओं के विस्तार व संकुचन से राष्ट्र की शक्ति नहीं आंकी जाती बल्कि उसकी यह संस्कृति है जो राष्ट्र को सबल व शक्ति शाली बनाती है। संस्कृति में कितनी प्रतिरोध शक्ति है यही राष्ट्र के प्रतिरोध की क्षमता का माप–दण्ड है। भौगोलिक परिधि तो संकुचित व विस्तृत होती रहती है। यहूदी राष्ट्र का उदाहरण सामने है। हजारों वर्ष तक बिना भूखण्ड के यह राष्ट्र केवल

अपनी संस्कृति के सहारे ही जीवित रहा और अंत में उसे इजराईल के रूप में भूखण्ड भी मिल गया। इसके विपरीत अफ्रीका के विशाल भूखण्ड अपनी संस्कृति के अभाव में अपना स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं रखते। अंग्रेज राष्ट्र अपनी संस्कृति के बल पर ही अमेरिका व आस्ट्रेलिया के विशाल भूखंडों पर छा गया और इन भूखंडों की मूल जातियाँ विलुप्त सी होगईं। संस्कृति का श्रोत जब तक राष्ट्र की नाड़ियों में बहता रहता है तब तक वह फलता फूलता है और इसके सूखते ही वह अपने आप मुरझा कर नष्ट होजाता है।

संस्कृति के इस अनन्त श्रोत को ही राष्ट्रीयता कहते हैं। इसी के द्वारा राष्ट्र का प्रत्येक घटक व प्रत्येक तत्व एक में गूंथा रह कर संगठित शक्ति का निर्माण करता है। यह संस्कृति ही है जो राष्ट्र को उसके अतीत से संबन्धित करती है और वर्तमान को बनाती हुई भविष्य की ओर ले जाती है। राष्ट्र यदि वट वृक्ष है तो संस्कृति उसकी जड़ है। चाहे जितना अंधड़ चले व तुफान टूटे अपनी सुदृढ़ जड़ों पर वट वृक्ष खड़ा रहता है। इतना ही नहीं घोर लूं लपट में जब आग बरसती है तब जड़ें पाताल से जीवन रस खींचकर वृक्ष की नस २ को पिलाती हैं उसी भांति संस्कृति घोर आपत्तिकाल में राष्ट्र को बचाती व जीवित रखती है। यदि वर्तमान बुरा है तो क्या हुआ अतीत के अक्षय भंडार से अभूतपूर्व बलिदान की भावना तथा पूर्व पुरुषों के गौरव मय आदर्श को सामने रख कर संस्कृति राष्ट्र के एक २ घटक को

जबरदस्त प्रतिरोधात्मक शक्ति में परिणत करके उसे मुर्झाने नहीं देती।

प्राकृतिक राष्ट्र व कृत्रिम राष्ट्र में इतना ही अंतर होता है कि कृत्रिम राष्ट्र की अपनी स्वयं की कोई संस्कृति नहीं होती क्योंकि संस्कृति मनुष्य द्वारा कृत्रिम रूप से निर्मित नहीं की जा सकती। अतः ऐसे राष्ट्र तभी तक खड़े रहते हैं जब तक इनकी अग्नि परीक्षा नहीं होती। इसके विपरीत शुद्ध राष्ट्र शुद्ध सोने की भांति संकट की अग्नि में तपकर और भी चमकदार निकलते आते हैं क्योंकि उनके पीछे अतीत का अनन्त श्रोत होता है जहां से शौर्य, तेज, व प्रतिभा सतह पर आकर राष्ट्र के चारों ओर दिव्य कवच निर्मित कर देते हैं जिससे टकरा कर शत्रु के सभी प्रयत्न तो विफल होते ही हैं साथ २ प्रत्येक नया आघात उसके अन्तस्तल में छिपी अग्नि को प्रगट करता है। कृत्रिम राष्ट्र नकली मुलम्मे के सोने के समान होते हैं जो ऊपरी टीम टाम में बहुत सुन्दर व शानदार अवश्य लगते हैं पर यह टीम टाम आग व पानी को सहन नहीं कर सकता। जैसे पानी के स्पर्श व अग्नि की लपट लगते ही नकली मुलम्मा अपनी चमक त्याग कर काला पड़ जाता है वैसे ही विपत्ति काल में, बलिदान के समय, कृत्रिम राष्ट्र का कृत्रिम रूप से मिलाया गया तत्व अलग होजाता है। ऐसा राष्ट्र शत्रु से न लड़ कर परस्पर ही लड़ने लगता है। बेलजियम, हालेन्ड अनेकों बार मिलाये गये आस्ट्रिया, हंगरी को भी मिलकर एक राष्ट्र बनाने के बार बार प्रयत्न किये गये

पर हर बार वह प्रथक २ ही दिखलाई दिये; और कितने ही वार जर्मनी को तोड़ा गया, उसके प्रदेश, मात्र भूमि से काट कर, कृत्रिम रूप से दूसरे राष्ट्रों के साथ मिलाये गये, मर वह हर वार जर्मनी में ही आकर मिले! संस्कृति तो वह दिव्य शक्ति होती है जो अणु के भीतर अदृश्य होकर छिपी रहती है और अणु का विघटन नहीं होने देती है। विज्ञान के सहारे तोड़े जाने पर अणु जैसे अमोघ शक्ति छोड़ता है वैसे ही यदि कभी कोई राष्ट्र टूटता भी है तो एक वार संसार को हिला डालता है!

एक राष्ट्र के अन्तर्गत विभिन्न राज्य होसकते हैं भौगोलिक परिधि का भी अतिक्रमण होसकता है; अनेकों धर्म भी होसकते हैं परंतु एक राष्ट्र की एकसे अधिक संस्कृति नहीं होती। उस संस्कृति पर जोभी आघात करता है या उसके समानान्तर में नई संस्कृति पनपाने का जो भी प्रयत्न करता है तो संघर्ष का सूत्रपात आरंभ होजाता है और यह संघर्ष उसी समय शान्त होता है जब या तो राष्ट्र की प्राकृतिक संस्कृति ही नष्ट होजाती है या फ़िर नई संस्कृति को पनपाने वाले तत्व का ही नाश होजाता है। भारत में बौद्ध धर्म के विनाश की तह में यही कारण छिपा है। भारत में अनेकों मत मतान्तर उत्पन्न हुये पर उन्होंने अपना आधार भारतीय या हिन्दू संस्कृति को ही रक्खा। बौद्ध धर्म का भी आधार हिन्दू संस्कृति ही था परंतु बाद में जब विदेशी आक्रमण कारियों ने बौद्ध मत अपना लिया, और यह विदेशों में भी फैला तो इसकी संस्कृति का आधार भी बदला। इसकी नींव

राष्ट्रीय न रह कर अन्तर्राष्ट्रीय होगई। शक व हूण आक्रान्ताओं के साथ बौद्धों ने सद्धर्मी कहकर गठबन्धन किया! और उनसे मिलकर हिन्दू संस्कृति के समानान्तर एक नई विकृत संस्कृति फैलाने की चेष्टा की। संघर्ष हुआ और उस संघर्ष में हिन्दुत्व विजयी हुआ। अतः बौद्ध धर्म विदेशों में तो बना रहा पर भारत की भूमि में जहां वह उत्पन्न हुआ था उखाड़ कर फैंक दिया गया। इस्लाम मत व ईसाई धर्म भी जहां केवल धर्म परिवर्तन तक सीमित रहे वहां उन्हें सफलता हुई। फारस, अफगानिस्तान व अरब के धर्म में परिवर्तन तो हुआ परंतु राज्य व शासकों में परिवर्तन नहीं हुआ अत. उनकी राष्ट्रीय संस्कृति को अक्षुण रक्खा गया। उसमें कोई परिवर्तन करने की या नया राष्ट्र बनाने की चेष्टा न हुई! जहां २ इस्लामधर्म व राष्ट्रीयता में टक्कर न हुई वहीं २ सफलता मिली परंतु स्पेन में तथा भारत में, इस्लाम का आगमन विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में हुआ जिन्होंने इन देशों पर अपनी विदेशी संस्कृत पनपाने के लिये धर्म को साधन बनाया भारत व स्पेन दोनों में इस्लाम विदेशी आक्रमणकारी या राष्ट्र शत्रु के रूप में पहुँचा और उसकी ओट में आक्रमणकारियों ने राष्ट्र के स्वरूप को ही बदलने का प्रयत्न किया अतः इन देशों में इस्लाम को राष्ट्रीय प्रतिरोध का सामना करना पड़ा! स्पेन ने एक भयंकर संघर्ष में मूरों को कुचल डाला परंतु भारत में यह संघर्ष निरंतर ७०० वर्ष तक हुआ और जब भारतीय संस्कृति की बाढ़ में इस्लाम डूबने को था तभी अंग्रेजों ने आकर

उसे बचा लिया और यह संघर्ष अब भी चालू है। यह साम्प्रदायिक या धार्मिक संघर्ष नहीं बल्कि धर्म के नाम पर विदेशी संस्कृति को भारत में स्थापित करने के प्रयत्नों की भारतीय राष्ट्रीयता द्वारा तीव्र प्रति क्रिया मात्र है! भारत में इस्लाम धर्म रह सकता है परंतु इस्लाम धर्म के साथ भारत में विदेशी संस्कृति जो घुसी उसको यहाँ कोई स्थान नहीं। हिन्दुस्थान के प्राकृतिक राष्ट्र हिन्दू के स्थान पर या उसके समानान्तर नया राष्ट्र नहीं खड़ा हो सकता क्योंकि एक म्यान में दो तलवारें जैसे नहीं रह सकती वैसे एक राष्ट्र के अन्तर्गत दूसरा राष्ट्र नहीं पनप सकता।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता का मूर्तिमान रूप हिन्दू है। जब संसार की दूसरी जातियाँ राष्ट्रीयता शब्द भी न जानतीं थीं और विकास की सबसे नीची सीढ़ी पर खड़ीं होकर राष्ट्र भाषा के नाम पर बोलना सीख रहीं थीं, तब हिंदू राष्ट्रीयता की प्रखर ज्योति सर्वत्र छिटक रही थी। हिन्दू शब्द किसी धर्म या सम्प्रदाय का द्योतक न होकर राष्ट्रीयता का प्रतीक है और इसका आधार भी धार्मिक नहीं बल्कि राष्ट्रीय है। अपने पीछे यह संस्कृति के ऐसे भंडार को छिपाये हैं जो ज्वालामुखी के हृदय में धधकने वाली अग्नि राशि के समान प्राकृतिक तथा उसी के समान सास्वत और अनन्त भी है। "हिन्दू" से किसी विशिष्ट धर्म का ज्ञान नहीं होता बल्कि उस भूखण्ड का स्मरण होता है जिसकी सीमाएं सिन्धु नदी से लेकर दक्षिण में सिन्धु यानी समुद्र पर्यन्त

फैली हुई हैं। इस भूखण्ड को पुण्य भूमि या पित्र भूमि मानकर जिसने उसे पूजित किया उसका नाम "सिन्धु" पड़ा। और इसी "सिन्धु" शब्द का रूपान्तर "हिन्दू" है। चूंकि प्राकृत भाषा में स का उच्चारण ह होता है जैसे सप्ताह का "हप्ताह" या "असुर" का "अहुर" "केसरी" का "केहरी" इसलिये "सिंधु" नदी के पूर्व बसने वाले "सिंधु" राष्ट्र को फारस आदि उस पार वाले प्राकृतभाषा-भाषी प्रदेश "हिंदू" कहने लगे और इस भूखण्ड को हिंदू का घर यानी हिन्दुस्थान कहा जाने लगा। जैसे तुर्क राष्ट्र का घर तुर्किस्तान; अफगान राष्ट्र का घर अफगानिस्तान; इंगलिश राष्ट्र का घर इंगलिस्तान या चीनी राष्ट्र का घर चीन हुआ उसी तरह हिन्दू राष्ट्र का घर हिन्दुस्थान कहलाया। यदि तुर्क तुर्किस्तान में साम्प्रदाय नहीं माने जा सकते, अंग्रेज इंगलिस्तान में साम्प्रदाय नहीं बन सकते तथा अफगानों को भी कोई साम्प्रदाय कहने का साहस नहीं कर सकता फिर अपने ही घर हिन्दुस्थान में किस परिभाषा से "हिंदू" साम्प्रदाय या धर्म बन गया? एक साम्प्रदाय या धर्म के अन्तर्गत अनेक संम्प्रदाय या विरोधी धर्म नहीं हो सकते और हिन्दू यदि सम्प्रदाय या धर्म होता तो उसके अन्तर्गत परस्पर विरोधी धर्म कैसे होते? मूर्ति पूजक सनातनी भी हिंदू और मूर्ति न पूजने वाला आर्य समाजी भी हिंदू। वैदिक धर्मावलम्बी भी हिंदू, वेदों को न मानते हुये जैन भी हिंदू। इतना ही नहीं ईश्वर को मानने वाला आस्तिक भी हिंदू और ईश्वर को न मानने वाला नास्तिक भी

हिंदू। धर्म अलग २ होने पर भी चूंकि इनकी निष्टा की केन्द्र एक ही भूखंड था और आधार भूत एक ही संस्कृति थी इसलिये धर्म में भिन्न २ होते हुये भी सभी राष्ट्र रूप में हिंदू ही रहे। हिन्दुस्तान में अनेकों धार्मिक क्रान्तियां हुई और ईश्वर को प्राप्त करने के ढंग पर अनेक वार तीव्र मतभेद उठा परंतु राष्ट्र की संस्कृति तथा उसके ऐतिहासिक तारतम्य को किसी ने नहीं छेड़ा अतः धार्मिक व साम्प्रदायक क्रान्तियों का राष्ट्र के रूप पर कोई असर नहीं पड़ा। वैदिक काल में जब भारत में एक ही धर्म था तब भी राष्ट्र हिंदू था। उसके बाद पौणारिक काल आया और भारत में बौद्ध व जैन आदि २ धर्मों की उत्पत्ति के साथ स्वयं सनातन धर्म में भी अनेकों साम्प्रदाय उत्पन्न होगये; उनमें परस्पर झगड़ा द्वेश फैला और संघर्ष भी हुआ। पर चूंकि सभी धर्मों व साम्प्रदायों का आधार एक हिंदू संस्कृति रही अतः राष्ट्र रूप में कोई परिवर्तन न हुआ उस समय भी भारत के निवासी "हिन्दू" ही कहे जाते रहे। हिन्दु राष्ट्र के अंतर्गत इन सभी धर्मों में मोक्ष के मार्ग भले ही भिन्न २ हों पर उनमें राष्ट्रीय समानता है। सभी के तीर्थस्थान हिंदुस्थान के भीतर ही हैं और सभी भारत माता को समान रूप से अपनी माता मानकर पूजित करते हैं। राम, कृष्ण, विक्रमादित्य, राणाप्रताप शिवाजी सभी के पूर्वज हैं और सभी के राष्ट्रीय पर्व भी समान है। विजय दसमी, होली, दिवाली, जन्माष्टमी, सभी एक से उत्साह से मनाते हैं। उत्तर का गौरवर्ण हिंदु तथा

दक्षिण का कृष्णवर्ण हिन्दु, हिंदु संस्कृति के एक ही डोरे में पिरोया गया है। हालांकि बोलचाल की भाषा में प्रांत २ में भेद पाया जाता है परंतु संस्कृति को व्यक्त करने वाली राष्ट्र भाषा संस्कृत ही है जो प्रान्तीय भाषाओं की जननी है और सभी के कर्मकाण्ड व धार्मिक संस्कारों की भाषा भी यही रही और आज भी है। राष्ट्रीयता तो हिंदु के रोम २ में इतनी व्याप्त होगई है कि उसके लिये इसका महत्व सम्प्रदायों से अधिक होगया है। उसके धर्म ग्रन्थ और कुछ नहीं बल्कि राष्ट्र व संस्कृति की रक्षा के लिये किये गये लक्ष २ वर्षों के युद्धों का इतिहास हैं। हिन्दू के दैनिक कार्यक्रम में भी राष्ट्रीयता की ही झलक मिलती है। पंजाब के गावों में स्नान करता हुआ हिंदू, काश्मीर की घाटी के झरने में स्नान करता हुआ हिंदू या बंगाल व मद्रास के सुदूर नगरों में स्नान करता हिंदू परस्पर अलग होते हुये भी "गंगा सिंधु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा, कावेरी सरयू महेन्द्रतनया चर्मण्वती वेदिका; क्षिप्रा वेत्रवती महासुर नदी ख्याता तथा गंडकी; पूर्णाः पूर्ण जलाः समुद्र सहिताः कुर्वन्तु नो मंगलम्"। श्लोक का ही पाठ करता हुआ अपने राष्ट्र व राष्ट्रीयता का स्मरण कर लेता है। वह किसी विशेष स्थान के जल से स्नान नहीं करता बल्कि वह राष्ट्र की सभी धाराओं के सम्मिलित जल से अपने राष्ट्र प्रेम को स्वच्छ करता है। वह एक क्षण को भी नहीं भूलना चाहता कि उसका कोई स्वतंत्र आस्तित्व नहीं बल्कि वह

उस महान हिंदु राष्ट्र का एक घटक मात्र है जिसकी गोद में इतनी नदियां क्रीड़ा करतीं हैं और समुद्र के साथ जो राष्ट्र की सीमा को निर्धारित करतीं हैं। वह अपने मंगल कामना के लिये किसी राष्ट्र के बाहर के स्थान का स्मरण नहीं करता बल्कि अपने राष्ट्र की सीमाओं का प्रतिदिन ध्यान करता है और समूचे राष्ट्र की सुरक्षा में ही अपनी सुरक्षा समझता है। हिंदु भारत के बाहर किसी मदीना या जेरुसलम की कल्पना में पागल नहीं होता बल्कि वह भिन्न २ रूपों में अपने भारत को ही पूजता है। उसके तीर्थ स्थान सभी भारत के अंदर ही हैं और उनकी स्थापना इस तरह भारत के भिन्न भागों में की गई है कि हिंदू के सामने सदैव राष्ट्र की एकता की भावना भरी रहे। वह उत्तर में गंगोत्री से यात्रा आरंभ करता है और धुर दक्षिण में रामेश्वरम पर समाप्त करता है। रामेश्वरम की मूर्ति पर गंगोत्री का ही जल चढ़ाने का विधान है। बारह ज्योर्तिलिंग की कल्पना भी इसी राष्ट्रीयता की पुनीत भावना से ही ओत प्रोत है।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्,
उज्जियिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरः।
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्,
वाराणस्यांच्च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने,
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशंच शिवालये।

इस तरह सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्री शैल में मल्लिकार्जुन

उज्जियिनी में महाकाल, ओंकार में परमेश्वर हिमालय में केदार-नाथ, डाकिनी में भीमशंकर, वाराणसी में विश्वनाथ गौतमी नदी पर त्र्यम्बक, चिताभूमि में वैद्यनाथ, दारुकावन में नागेश सेतुबंध में रामेश्वरम् तथा शिवालय में घुश्मेश। यह १२ ज्योतिर्लिंग उत्तर में केदारनाथ से दक्षिण में रामेश्वरम् तथा पच्छिम में सोमनाथ से लेकर पूर्व में वैद्यनाथ धाम तक फैले हुये हैं। सप्त पुरियों को ही लीजिये—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता: मोक्षदायिका:॥

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी कांची अवन्तिका और द्वारका यह भी समूचे भारत को घेरे हुए हैं। चार धाम द्वारिका जगन्नाथ, बद्रीनाथ और रामेश्वरम् में भी राष्ट्र की एकता की ही भावना मिलती है। दक्ष यज्ञ में सती जी की मृत्यु के बाद जब उनके शरीर को लेकर भगवान शंकर ने पर्यटन किया उसमें भी भारत का ही मान चित्र बनकर सामने आ जाता है। जहां २ सती का अंग गिरा वहीं २ शाक्तों की देव पीठों का निर्माण हुआ। कामगिरि पर कामाख्या, कलकत्ते में "काली" वाराणसी में "अन्नपूर्णा' कांगड़े में "ज्वालामुखी" हिंगोल नदी के किनारे हिंगुला देवी, विन्ध्याचल में "विन्ध्यवासिनी" नीलगिरि में "नीलाम्बरी" श्रीनगर में जाम्बुनदेश्वरी, नेपाल में "गुहयकाली, कोल्हापुर में "महालक्ष्मी" मदुरा में "मीनाक्षी" गया में "मंगला" कुरुक्षेत्र में "स्थाणुप्रिया" और कनखल में उग्रा की स्थापना

हुई! सभी हिंदुओं का पित्र तर्पण गया में तथा मातृ तर्पण सिद्धपुर में होता है। यह सब क्या था! केवल राष्ट्र के विभिन्न अंगों को निरंतर एक दूसरे के साथ सम्पर्क में लाने की योजना जिससे राष्ट्रीय एकता व चेतना निरंतर प्रज्वलित बनी रहे और किसी भी समय प्रान्त भेद का विष राष्ट्र के शरीर में थोड़ा भी व्याप्त न होने पावे। क्या संसार के किसी भी देश में राष्ट्र के अन्दर निरंतर सम्पर्क बढ़ाने व उन्हें सदैव राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत रखने की ऐसी योजना पाई जाती है? और क्या भारत में हिंदू से बढ़ कर देश भक्त व राष्ट्रीय कोई हो सकता है?

इस तरह हिंदू वह है जो सिन्धु से लेकर सिंधु यानी समुद्र पर्यन्त भूमि का प्राकृतिक अंग है। वह यहां की आबहवा व पेड़ पत्तों व पहाड़ों के साथ ही उत्पन्न हुआ और इसीलिये उसने इस भूखंड के नदी पहाड़ व पेड़ों को भी पिता माता मानकर पूजित किया है; तथा यहां के जीव जन्तुओं पशु पक्षियों में भी सौहाद्र माना है। इस भूखंड की स्वतंत्रता के लिये जिसने सतत संग्राम किये उसी का नाम हिंदू है। जब ईसाई व मुसलमानी धर्म उत्पन्न भी नहीं हुऐ थे और जब सभी जगह एक ही धर्म था तब भी अपने समान धर्म वाले आक्रमणकारी के विरुद्ध हिंदू ने राष्ट्र के रक्षण के लिये निरंतर युद्ध किया; और उन युद्धों का वर्णन करते हुये हिंदू आज भी गौरव से भर जाता है। चाहे विदेशी आक्रमणकारी वैदिक धर्मावलम्बी रहा हो या पौराणिक धर्मों का मानने वाला हो वह चाहे बौद्ध हो; या इस्लामी मता-

वलम्बी, सभी का सामना हिन्दू ने एक सी दृढ़ता व आत्म त्याग की भावना से किया। शत्रु को घृणा करने या उसके सामने कभी न झुकने वाली जो भावना हिंदू ने वेदों के प्रकाण्ड विद्वान रावण के साथ दिखाई वही अपूर्व शौर्य व दृढ़ता हिंदू ने दूसरे धर्म के मानने वाले इस्लामी आक्रमणकारियों के विरुद्ध भी प्रगट की। राष्ट्रीयता की उस पवित्र ज्योति का नाम हिंदू है जो अराष्ट्रीयता व राष्ट्र शत्रुओं के हजारों व लाखों थपेड़े खाकर भी निरंतर जलती रही, जिसको बुझाने के लिये दानव दैत्य निशाचर, शक, हूण, ग्रीक, मुसलमान व अंग्रेज सभी के शक्ति शाली अंधड़ आये पर हिंदुस्थान की राष्ट्र ज्योति को एक क्षण के लिये भी धूमिल न कर सके। यदि कभी इस चिगारी में थोड़ी भी धूमिलता आती दिखाई दी तभी हिन्दू ने अपने हृदय के रक्त की आहुतियां देकर हिन्दुत्व की अमर ज्वाला को प्रज्व-लित रक्खा। कभी राम कभी कृष्ण कभी चन्द्रगुप्त कभी शिवा जी तो कभी प्रताप के रूप में हिंदू राष्ट्रीयता ने साकार रूप धारण कर अपनी तेजस्विता व अमरता का परिचय दिया। यह हिंदू के ही तो पूर्वज हैं और आज हिंदू ही तो इनसे स्फूर्ति ग्रहण करता है तथा इनके ही पद चिन्हों पर चलना अपने जीवन का सबसे ऊंचा लक्ष्य समझता है। हिंदू का स्वतंत्रता संग्राम तो इतना पुराना है जितना हिंदुस्थान का आस्तित्व; जब हिमालय ने पृथ्वी के ऊपर अपना शिर उठाया था तब उसने भी हिन्दू को हिन्दुस्थान की रक्षा के लिये सन्नद्ध खड़ा

देखा और हिमालय की वर्फीली तहों में ही राष्ट्र रक्षा के निमित्त हिंदुओं द्वारा किये गये अगणित संघर्षों का इतहास लिखा पड़ा है। हिन्दू ने ही इस भूखंड को उसके पर्वतों नदियों व जलासयों का नाम दिया है। उसी ने हिमालय को हिमालय तथा गंगा को गंगा कह कर सबसे पहले पुकारा था और हिमाच्छादित दुर्गम चोटियों पर चढ़ कर उनका भी नामकरण संस्कार करने वाला हिन्दू ही था। संसार की दूसरी जातियां अपने देशों को पित्र भूमि कह कर पुकारतीं हैं परंतु हिन्दू ने हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप वाली भूमि को अपनी मात्रभूमि मानकर उसे स्वर्ग से भी ऊंचा स्थान दिया है। हिन्दुस्थान और हिंदू दोनों अभिन्न हैं, एक के बिना दूसरे का जीवन नहीं। हिंदू से ही यह जड़ रूप चेतन है। हिंदू का इतहास ही हिंदुस्थान की राष्ट्रीयता व संस्कृति का इतिहास है और हिंदू के उत्थान और पतन के साथ भारत का भी उत्थान पतन होता रहा है।

२

हिंन्दुस्थान के ऊपर भयंकर से भयंकर परिस्थितियां उमड़ती हुई आईं और चली गईं। महाप्रलयकारी तूफान अपनी सम्पूर्ण आसुरी शक्तियों के साथ हिन्दू राष्ट्र से आ आ कर टकराये और स्वयं ही टूंक २ हो छितरा गये। हिंदुओं की पुण्यभूमि हिंदुस्थान पर जिसनें भी गर्व से पदाघात किया उसका ही पैर पकड़ कर यहां के धूल कणों ने निगल लिया। दानव, दैत्य, निशाचर, ग्रीक शक, हूण सभी वारी २ से सम्राज्यों को उलटते, राजमुकटों को पैरों से उछालते तथा विशाल भूखंडों को रोंदते हुये आये और हिन्दू राष्ट्र के अन्तस्तल में धधकती-हुई राष्ट्रीयता की अनन्त अग्नि राशि में पतंगों के समूह की भांति जल कर भस्म होगये।

हिंदू राष्ट्र कल्पना नहीं बल्कि सजीव सत्य है। उसकी नींव "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा" के कमजोर आधार पर नहीं बनी है बल्कि लाखों करोड़ों वर्ष तक अगणित हुतात्माओं

के रक्त तथा हड्डियों की कठोर व न हिल सकने वाली नींव पर इस राष्ट्र का निर्माण हुआ है। अपनी मज्जा को जला कर एवं अपने प्राणों की आहुति देकर हिन्दुओं ने राष्ट्रीयता की अग्नि सुलगाई है जिसको आने वाली संतति ने अपने हृदय का रक्त दान कर प्रज्वलित रक्खा है। इस राष्ट्र का निर्माण कब हुआ तथा राष्ट्रीयता की अग्नि कब और किसने सुलगाई यह कोई नहीं बता सकता। करोड़ों वर्षों के समय ने भी इस राष्ट्र-अग्नि को इसी तरह धधकते हुए ही पाया था और प्रत्येक युग और प्रत्येक कल्प में नवीन आहुतियां पाकर यह अग्नि निरंतर प्रज्वलित होती गई। अपने अन्तस्तल में धक धक कर जलती हुई इसी पवित्र राष्ट्रीयता से रक्षित होकर हिन्दू राष्ट्र कभी पर-तंत्र नहीं रहा है। जब किसी भी राष्ट्र शत्रु ने राष्ट्र जननी भारत के किसी अंग को दासता के कलंक से कलुषित करना चाहा तभी उसके अंग प्रत्यंग से अग्नि ज्वालायें फूट निकली हैं। हिंदू राष्ट्र का इतिहास कायरता व दीनता का इतिहास नहीं बल्कि बलिदान और विजय का इतिहास है। राष्ट्रीयता ही उसका धर्म है और राष्ट्र रक्षा के लिये लड़े गये अगणित युद्धों का वर्णन ही उसकी धर्म पुस्तकें हैं।

राष्ट्र शत्रु जिस रूप में और जिस अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर आया उसके ही अनुरूप हिंदू की भी अन्तर्शक्ति प्रगट हुई। कोई कभी उसे अचंभे में नहीं डाल सका। यदि उसका सामना तीव्र बिष से हुआ तो उसने उसे मारने के लिये

और भी अधिक तीव्र विष का उपयोग किया। राष्ट्र शरीर में घुसे कंटकों को उसने शहद लगा कर निकालने की चेष्टा न करके कांटे से ही निकाल कर फैंक दिया। यदि दैत्य राज हिरण्याक्ष ने समस्त भू मंडल को जीत कर अपनी शक्ति के मद में चूर होकर हिंदू संस्कृति को मिटाना चाहा तो हिंदू राष्ट्र ने अपनी असमर्थता प्रगट नहीं की बल्कि अपने को उसी के अनुरूप वाराह रूप में बदल कर उसकी अधर्मी सत्ता का नाश कर डाला और जब राष्ट्र शत्रु हिरण्यकशिपु के रूप में इतना बलशाली होगया कि उसका जल, थल, नभ में मनुष्य देवता व पशु सभी द्वारा मारा जाना असंभव होगया तो भी हिंदू राष्ट्र किं कर्तव्य-विमूढ़ न हुआ और नरसिंह रूप धारण करके इस संकट से भी भारत को मुक्ति दी।

राष्ट्र देव भगवान राम द्वारा रावण वध और लंका दहन का कारण भी धार्मिक नहीं था क्योंकि उस समय समस्त संसार में भारतीय ऋषियों द्वारा प्रति पादित एक ही धर्म था और रावण तो वेदों का प्रकान्ड ज्ञाता और भगवान शिव का अनन्य भक्त था। उससे हिंदुओं का धार्मिक विरोध नहीं था परंतु यदि विरोध था तो वह राष्ट्रीय था। रावण का हिंदुओं की दृष्टि में सबसे बड़ा अपराध यह था कि वह हिन्दू राष्ट्र का अंग न होकर विदेशी था। 'एक' धर्म का मानने वाला होते हुए भी वह भिन्न राष्ट्र का अंग था क्योंकि सिन्धु से समुद्र तक वाले भूखंड को सीमा पार लंका का वह निवासी था। इतना ही नहीं उसने, हिंदू के

पर हिंदुस्थान को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत लाकर भारतीय स्वतंत्रता लक्ष्मी का हरण किया था ! उसके साम्राज्यवादी चंगुल से छूटने के लिये और स्वतंत्रता लक्ष्मी के उद्धार के लिये हिंदुओं ने उस युग का सबसे खूनी और भयंकर युद्ध लड़ा और राष्ट्रदेव राम के नेतृत्व में पग २ पर शत्रु को पीछे ढकेलते हुये न केवल उसे भारत से बाहर ही ढकेल दिया बल्कि स्वयं राष्ट्र शत्रु के शक्ति केन्द्र पर आक्रमण करके रावण के वंश का समूल नाश कर डाला और वह लंका जिसके स्वर्ण कंगूरे आकाश को छूते थे तथा जहां संसारका वैभव रावणके पैर चूमता था उसे भी जलाकर राख कर डाला। भगवान कृष्ण के हाथों कंसवध, जरासंधवध, शिशुपाल वध तथा अनेकानेक दानवों व दैत्यों की मृत्यु में भी हिंदू राष्ट्र के आश्चर्य जनक अमरत्व का आभास मिलता है। कंस, रावण के समान विदेशी न होकर भारत की भूमि से ही उत्पन्न था परंतु वह उस गुट्ट का अंग था जिसने राष्ट्र की सामूहिक स्वतंत्रता का अपहरण करके अपनी व्यक्ति गत सनक के अधीन कर रक्खा था। काल यवन प्रभृति अनेक विदेशी शासक भारत की भूमि को पददलित कररहे थे और कंस उनके आगे निरंतर झुकता हुआ अपनी शक्ति का दुरुपयोग राष्ट्रीय तत्वों को दबाने में कर रहा था। राष्ट्र भक्त जेलों में बन्द थे, उनके मुंह पर ताले लगे थे, और राष्ट्र द्रोही स्वच्छन्द थे। हिन्दू संस्कृति और सभ्यता की उपेक्षा थी, उसके स्थान पर दानवी संस्कृति पनपाने का प्रयत्न चालू था। राष्ट्रोद्धार की

सभी योजनायें विफल हो चुकीं थी। कंसव कालयवन के गुप्तचर पृथ्वी को सूंघते फिरते थे और प्रत्येक योजना निर्दयता से कुचल दीजाती थी, ऐसे समय में जब सर्वत्र अंधकार था और राष्ट्र पर विपत्ति के बादल घिरे थे तब भी हिन्दू राष्ट्र ने अपना संघर्ष जारी रक्खा और अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ जबकि भगवान कृष्ण के नेतृत्व में हिंदू राष्ट्र ने इस आन्तरिक कंटक को भी निकाल फैंका।

राण, रामायण और महाभारत तथा अनेकों धर्म ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि काल से भी अधिक मारक और क्रूरता से भी अधिक क्रूर झंझावातों ने शत और सहस्र बार हिंदू राष्ट्र को झकझोर कर उखाड़ डालना चाहा। नाग सर्प उत्तर से तो दानव, दैत्य दक्षिण से बार २ टिड्डीदल की भांति उमड़ते हुऐ भारत में घुसे और प्रत्येक बार बिजली की तेजी के साथ संकट के अनुरूप अपने में परिवर्तन करके हिंदुओं ने परिस्थिति का सामना किया। कभी संसार ने बौना रूप धारण कर दैत्यराज बलि को छलते देखा तो दूसरे ही क्षण अपना विराट रूप धारण कर वह संसार भर को अपने जबड़ों में पीसता हुआ भी दिखलाई पड़ा। कभी उसने अपनी भीषण प्रति हिंसा का प्रदर्शन करते हुये नाग यज्ञ किये तो कभी मोहनी रूप धारण कर भस्मासुर का विनाश करने को छल का आश्रय लिया। महर्षि दधीचि का अस्थि दान जहां राष्ट्र रक्षा के लिये महत्तम आत्मोत्सर्ग का नमूना है, वहां

देवासुर संग्राम में अनेक वार पराजित होते हुये भी विखरी राष्ट्र शक्ति को वार २ संगठित करके प्रत्याक्रमण द्वारा विजय प्राप्त करना हिन्दू राष्ट्र की अनुपम संगठन शक्ति व दृढ़ता का प्रतीक है। हिन्दू के स्वभाव की सबसे वड़ी विचित्रता जो प्रत्येक युग में दिखलाई देती है वह है उनकी उत्कट राष्ट्रीयता और अपूर्व स्वतंत्र्य प्रेम। आक्रमणकारी चाहे जितना भी शक्ति शाली क्यों न रहा हो उन्होंने कभी भी अपनी पराजय स्वीकार नहीं की और तब तक निरंतर प्रतिरोध जारी रक्खा जब तक उसे नष्ट भ्रष्ट नहीं कर डाला। किसी भी राष्ट्र की पराजय एक दो युद्ध क्षेत्रों में हार जाने पर नहीं होती और वह तब तक युद्ध में हारा नहीं माना जाता जब तक कि उसका प्रतिरोध जारी रहता है। पराजय तो तब होती है जब विजित राष्ट्र विजेता के सन्मुख आत्मसमर्पण करके प्रतिरोध का परित्याग कर देता है। हिन्दू राष्ट्र की प्रतिरोधात्मक क्षमता ही उसकी अमरता है। और इसी के कारण प्रवल से प्रबल आक्रमणकारी अपनी शक्ति को भारत में निचोड़ कर नष्ट भ्रष्ट होचुके हैं। महिषासुर, चण्ड, सुन्द, उपसुन्द, धूम्रलोचन के साथ पौराणिक काल में हिन्दू राष्ट्र ने जो अगणित युद्ध किये और पराजय की छाया के नीचे खड़े होकर दुर्गा तथा चण्डिका के रूप में जो अमोघ संगठन शक्ति का सृजन करके उन पर विजय प्राप्त की यह संसार के इतिहास में अभूतपूर्व है। जहां इस गुण के आभाव में संसार की अनेकों जातियां एवं राष्ट्र

मिट गये वहां अपने इसी गुण के कारण हिन्दू अपने गौरव को सुरक्षित रखते हुये आज भी अपने पूर्व रूप में ही जीवित हैं।

भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य तथा विक्रम संवत का होना ही हिन्दुस्थान के उस स्वतंत्रता युद्ध की ओर संकेत करता है जो हिंदू राष्ट्र को पौराणिक काल के बाद अनेकों विदेशियों के साथ लड़ना पड़ा था। चक्रवर्ती और विक्रमादित्य यह दोनों पदवी भिन्न २ अर्थ रखती हैं। छोटे २ राजाओं को पराजित कर बिखरी राष्ट्र शक्ति को एक करके सार्वभौम राज सत्ता स्थापित करने वाले चक्रवर्ती कहलाये और जिन्होंने ब्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के लिये नहीं बल्कि राष्ट्र हित की भावनाओं से ओत प्रोत हो राष्ट्र स्वतंत्र्य संग्रामों को लड कर किसी विदेशी शत्रु को भारत की सीमाओं से वाहर ढकेल दिया उनको विक्रमादित्य कह कर गौरवान्वित किया गया है। विदेशियों के पदाघात से क्रोधित हुये हिंदू राष्ट्र के अन्तस्तल से प्रस्फुटित दैवी ज्योति को ही हिंदुस्थान ने विक्रम का सूर्य कहकर पुकारा है। इसी विक्रम के सूर्य ने समय २ पर हिंदू राष्ट्र पर छाये हुये राष्ट्र संकट के घनघोर अंधकार को भेदन किया है और उनकी तलवार मात्र बंधन काटने के लिये वज्र बन कर शत्रुओं पर गिरी है।

सर्व प्रथम विजयी सिकन्दर की महत्वा कांक्षा ने भारतीय स्वतंत्रता को निगलना चाहा। वह अपने दल बादल के साथ बिशाल भूखण्डों को लांघता हिन्दू कुश के दर्रों में होकर भारत

में घुसा ! तक्षशिल के राजा आँभी ने उस युग का जयचन्द बन कर भारत का सिंह-द्वार विदेशी यवन सैन्य के लिये खोल दिया किन्तु तत्क्षण ही अपने मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर पुरु ने झेलम के तट पर विश्वविजयिनी ग्रीक वाहिनी के मार्ग को रोका। घनघोर युद्ध हुआ। ग्रीकसेना ने वार २ आगे बढ़ कर भारतीय प्रतिरोध को तोड़ना चाहा और वार २ हिंदू शौर्य से टकरा कर उसे लौट जाना पड़ा ! सिकन्दर महान के विश्व विजय करने के स्वप्न को झेलम के तट पर पुरु ने बुरी तरह झकझोर डाला और सिकन्दर ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की जीवित समाधि उसी युद्ध क्षेत्र में बनते देखी। वह घबड़ा गया और दूसरे ही क्षण अपना समस्त गर्व तथा स्वाभिमान भूल कर पुरु के साथ संधि कर अपने सर्वनाश को बचा लिया।

पुरु वीर था, देशभक्त था, परंतु साथ ही साथ वह महत्वाकांक्षी भी था और अपनी महत्वाकांक्षा राष्ट्र हित के लिये दबा नहीं सकता था। यही उसकी कमजोरी थी जिसका लाभ उठा कर सिकन्दर ने उसे अपनी ओर मिला लिया। सिकन्दर ने पुरु को भारत सम्राट बना देने का लोभ दिया और बदले में पुरु, सिकन्दर का मगध साम्राज्य के विरुद्ध साथ साथ देने को तैयार होगया और दोनों की सम्मिलित फौजें मगध पर धावा बोलने को तैयार होने लगी। सिकन्दर ने भारत प्रवेश के बाद दो चित्र देखे। आंभी में उसने देशद्रोही को देखा तो पुरु में वीरता के साथ महत्वाकांक्षा को पाया परंतु अभी

उसे शुद्ध राष्ट्रीयता का मूर्तिमान रूप देखना शेष था। इसका हलका आभास उसे तब मिला जब उसने सुना कि उसकी सेना ने ब्यास के आगे बढ़ने से इनकार कर दिया है और खेबर के आस पास के प्रदेश में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अचानक विद्रोह की आग भड़का कर उसके पीछे लौटने के मार्ग को भी काट दिया है। राजर्षि विश्वामित्र से रक्षित भगवान राम के बाद ब्रह्मर्षि चाणक्य के शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य में भारत ने अपना प्रथम विक्रमादित्य देखा जिसने विश्व विजयी यवन सेनाओं को भारत से बाहर खदेड़ दिया।

चाणक्य ने अपना जाल अच्छी तरह बिछाया था। वह मगध सम्राट नंद का प्रबल शत्रु था और उनके विनाश के लिये प्रतिज्ञा भी कर चुका था परंतु विदेशी आक्रमण द्वारा मगध का विनाश उसे सहन नहीं था। वह यह भी जानता था कि मगध साम्राज्य इतना जर्जरित होचुका है कि ग्रीक सेना की टक्कर खाते ही मिट जायगा और फिर सिकन्दर के भारत विजय के बीच कोई बाधा न-रहेगी। पुरु, जिसने झेलम के तट पर अनुपम वीरता दिखाई थी, अब यवन सम्राट के बहकाने में आकर उसकी कठपुतली थी और दूसरा कोई भी शासक ऐसा दिखलाई न देता था जो सिकन्दर को पराजित करना तो दूर की बात कुछ क्षण भी रोकने का साहस करता। अतः चाणक्य इस प्रयत्न में लगा कि ग्रीक सेना को ही पाटिलिपुत्र की ओर बढ़ने से रोका जाय और यह तभी संभव है जबकि उसके चरित्र बल

को छिन्न भिन्न किया जा सके। इसका उपाय भी शीघ्र निकाल लिया गया क्योंकि चाणक्य राजनीति का अत्यन्त दक्ष खिलाड़ी था। उसका सिद्धान्त था कि अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिये छल आदि निम्न साधनों का प्रयोग करना न तो निन्दित ही है और न त्याज्य ही माना जा सकता है।। पाप और पुण्य मनुष्य की कृति में नहीं वल्कि मन में होते हैं। दुष्ट और आततार्इ के साथ धर्म नीति का व्यौहार करना या उसके हृदय परिवर्तन होने की बात करके उसको दंडित न करना यह भारतीय परम्परा नहीं रही है वल्कि "शठे शाठ्यं समाचरेत" के सिद्धान्त को ही भारत के युग पुरुषों ने माना है। पेड़ की ओट लेकर धोखे से बालि को मारना या घर के भेदी विभीषण को आश्रय देकर उसकी सहायता से रावण वध करना जहां भगवान राम के उदाहरण हैं वहां भगवान कृष्ण ने भी "नरो या कुंजरो" का सहारा लेकर महारथी द्रोणाचार्य का वध कराया था। युद्धभूमि में निशस्त्र रहने की प्रतिज्ञा करने वाले कृष्ण द्वारा यज्ञभूमि में शिशुपाल का शिर काटना ऊपरी दृष्टि से भले ही असंगत प्रतीत हों अथवा लगणी नैतिकता की कसौटी पर ठीक न जंचे परन्तु भारतीय संस्कृतिकी विलक्षणता या उच्चता इन्हीं दृष्टान्तों में भरी है और प्रत्येक युग पुरुष ने इनका ही अनुकरण कर राष्ट्र को वचाया है। चाणक्य तो फिर इस विद्या में आचार्य ही था अतः उसने पुरु की सेना के बहुत से सिपाही अपनी ओर मिला लिये तथा बहुत से अपने शिक्षित जासूस

गुरु की उस सेना में शामिल कर दिये जो पाटिलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिये बनाई जा रही थी। इन जासूसों ने सिकन्दर के सैनिकों के हृदय में झूठा भय व आतंक भरना आरंभ किया। उन्होंने कहा कि "मगध का मंत्री राक्षस है और उसके पास राक्षसों की सेना है जो मनुष्यों को खा जाती है "मगध में छे २ माह वर्षा होती है व एक २ बूंद सेर २ भर की होती है"। या "मार्ग में सैकड़ों नदियां पड़ेगी जो सिधु नदी से भी अधिक चौड़ी और वेगवती हैं"। इस प्रचार का असर वही निकला जो सोचा गयाथा। सिकन्दरके वह सैनिक जिनका साहस भारत में घुसने के बाद से ही डगमगा रहा था इन बातों को सुनकर और भी आतंकित हो उठे और उन्हें निश्चय होगया कि मगध पर आक्रमण करके वह जीवित न बचेंगे। उन्होंने आगे न बढ़ने में ही कल्याण देखा। अपने ही सैनिकों की अवज्ञा तथा उनका आगे न बढ़ने का निश्चय सिकन्दर के ऊपर वज्राघात सा था जिससे वह तिलमिला गया। उसने अपनी सेना को बहुत समझाया पर चाणक्य के जासूसों ने अपना ऐसा असर जमाया था कि सिकन्दर के सभी प्रयत्न बेकार गये और उसे बाध्य होकर भारत विजय को अधूरा छोड़ कर पीछे लौटना पड़ा। परंतु चाणक्य को यह भी सहन न था। वह सिकन्दर को सुरक्षित रूप से लौटने भी न देना चाहता था और उसकी शक्ति को इतना तोड़ देना चाहता था जिससे वह जल्दी वापस न आ सके और चाणक्य को आंतरिक विप्लव करके मगध राज्य को

ध्वंस करने का पर्याप्त समय मिल सके अतः उसी ने खैबर के आस पास विद्रोह की योजना की थी जिससे उत्तरी मार्ग रक्षित होजाने पर ग्रीक सेना को सिंध और मकरान के रास्ते वापस लौटना पड़ा और इस रास्ते के कण २ से ज्वालामुखी धधक निकले। मल्लक और शिवी जातियों ने ग्रीक सेना की धज्जियां उड़ा दीं। स्वयं सिकन्दर को भी इन्हीं युद्धों में ऐसा आघात लगा जिसके कारण ही वह वापस स्वदेश भी नही पहुँच पाया और बीच में ही बेबीलन पहुँचते २ उसकी मृत्यु होगई।

चाणक्य जानता था कि ग्रीक पुनः लौटेंगे और उनके साथ दूसरी टक्कर अधिक भयंकर तथा निर्णायक सिद्ध होगी। इस बीच के थोड़े से समय में ही उसे भारत को ऐसा संबल व शक्तिशाली बनाना था जिसमें राष्ट्र शत्रु को कहीं भी आश्रय न मिले। देशद्रोही आंभी, महत्वाकांक्षी पुरु और घुना हुआ विलासी नन्द इनमें से किसी को भी चाणक्य के भारत में स्थान न था और इसी कार्य में वह जुट भी पड़ा। सुव्यवस्थित षड्यंत्रों की श्रृंखला आरंभ हुई जिसमें मगध के नन्द और झेलम प्रदेश के पुरु दोनों का लोप होगया! उत्तर भारत में फैले हुये छोटे २ गणतंत्रों के स्वतंत्र अस्तित्व को भी मिटा दिया गया और समूचा आर्यावर्त चन्द्रगुप्त मौर्य के नेत्रत्व में नवीन जीवन से स्पंदित होने लगा। चाणक्य का अनुमान भी सत्य ही निकला। ग्रीक लौटे। सिल्युकस के नेत्रत्व में यूनांनी सेना भारत में घुसी परंतु उन्हें न तो देश द्रोही आंभी का आतिथ्य

ही मिला और न मिली पुरु की मित्रता। पाटलिपुत्र का जर्जरित वंश भी वहां न था जो उदासीन होकर उनके भारत प्रवेश को देखता रहता और न थे परस्पर लड़ने वाले छोटे २ गणतंत्र ही। उनकी प्रथम भेंट हुई हिंदू राष्ट्र के प्रथम विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त मौर्य से जो सुदूर मगध से चलकर तक्षशिला में शिक्षित सेना लिये भारत के प्रवेश द्वार की रक्षा कर रहा था और जिसके पीछे एकात्म रूप होकर-समूचा राष्ट्र श्रेणीबद्ध हो खड़ा था। यूनानी सेना जितनी तेजी से आयी थी उतनी ही शीघ्रता से उसे लौटना भी पड़ा और भारत की उत्तरी सीमाएं सिंध नदी से बढ़कर अफगानिस्तान और फारस आदि प्रदेशों को अपने में समेटतीहुई सुदूर उत्तर में जा पहुँची।

चन्द्रगुप्त के पुत्र विन्दुसार और पौत्र अशोक को अपने पिता व पितामह से उत्तराधिकार में विशाल एवं सुव्यवस्थित सम्राज्य के साथ २ वह भय और आतंक भी प्राप्त हुआ था जो चन्द्रगुप्त ने विदेशियों के हृदय में भर दिया था, जिसके कारण किसी भी विदेशी ने भारत की ओर मुंह करने का साहस न किया और उनके शासन काल में कुछ भी गड़बड़ न हुई। समूचा देश सुरक्षा की ऐसी भावना में डूब गया जिसके कारण राष्ट्र की जागरुकता का लोप होने के साथ २ राष्ट्रीय एकात्मता भी ढीली पड़ गई और विघातक तत्व सतह पर धीरे धीरे दिखलाई देने लगे। "अकर्मण्य मन कुत्सित योजनाओं का घर है" यह कहावत मनुष्य और राष्ट्र दोनों के लिये समान रूप

से उपयुक्त है। शांति की प्रशंसा में चाहे जितने गीत गाये जावें परन्तु यह सनातन सत्य है कि राष्ट्रों व जातियों का तभी तक उत्कर्ष होता है जब तक वह युद्धप्रिय रहते हैं और जहां उनमें शांति की चाहना उत्पन्न हुई वहीं उनका अपकर्ष आरम्भ हो जाता है। ग्रीक रोम तुर्क मुगल सभी का यही इतिहास है। अहिंसा दया, क्षमा आदि सिद्धांत व्यक्तिगत आत्मोन्नति का साधन भले ही हों परंतु राष्ट्र पर यदि इन्हें थोपा जावे या राजनीति में इनको मिलाया जावे तो यही उच्चसिद्धांत राष्ट्र के पतन के कारण भी बन जाते हैं क्योंकि इनकी ओट में कायरता-प्रमाद व ढोंग एवं निष्क्रियता का घातक बिष राष्ट्र की नश २ में फैलने लगता है।

अशोक के राज्य काल में यही हुआ। उनके हृदय में शांति की ऐसी तीव्र चाहना उत्पन्न हुई कि उन्होने बौद्ध मत की दीक्षा ले ली और उसे राज्यधर्म बनाकर राज्य के समस्त साधनों के साथ उसके प्रचार में जुट पड़े। धर्म को राजनीति में सम्मिलित करके एक सम्प्रदायक या धार्मिक राज्य स्थापित करना, यह अशोक की सबसे बड़ी भूल थी जो मौर्य साम्राज्य एवं राष्ट्र दोनों के लिये भयंकर साबित हुई। हिंदू राष्ट्र की पद्धति धर्म और राजनीति को अलग २ रखना सदैव से रही है। अशोक के पूर्व सभी ने इस पद्धति को निवाहा भी था। किसी भी राजा ने चाहे वह स्वयं जैन-वैशणव-सनातनी-शैव आदि किसी भी मत का क्यों न रहा हो—अपने राज्य को शैव-वैशणव या सनातनी संज्ञा नहीं दी थी--फलस्वरूप विभिन्न धर्मों को मानते हुये भी

राष्ट्रीय जीवन में सभी एक रूप हिन्दू ही थे। अशोक द्वारा बौद्ध साम्प्रदाय के प्रति दिखाये गये पक्षपात एवं राज्यधर्म पर उसकी प्रतिष्ठा की, अन्य साम्प्रदायों पर प्रतिक्रिया हुई और ऐसे संघर्ष का सूत्रपात्र हुआ जिसमें मौर्य सांम्राज्य उसी भांति समा गया जैसे औरंगजेब द्वारा उठाये गये धार्मिक बवंडर में आगे चलकर मुगल साम्राज्य डूबा। इतना ही नहीं बौद्ध धर्म पर भी अशोक के इस पक्षपात का घातक असर हुआ। राजनीति के साथ जुड़ जाने पर यह धर्म राजनैतिक षड़यंत्रकारियों व महत्वाकांक्षियों का अखाड़ा बन गया। और उनके साथ ही बौद्ध मठ एवं बौद्धविहार पूजाग्रहों से बदल कर षड़यंत्रकारियों के अड्डों में बदल गये। थोड़े समय में ही धर्म का तो एक पतला आवरण मात्र रह गया और उसके नीचे स्वार्थ पाखंड भ्रष्टाचार एवं विलासिता का घृणित श्रोत बह निकला और उसके साथ ही फूट पड़ी बौद्धों के प्रति जनता के हृदय में भयंकर असंतोष और घृणा की भावना। चूंकि बौद्धों को राज्य का आश्रय था—अतः अधिक समय न बीता जबकि इस असंतोष ने क्रांति का रूप लेकर राज्यसत्ता पर ही ठोकर मारी। अशोक के पौत्र वृहद्रथ को उसकी सेना के सामने उसके ही सेनापति ने मार डाला और अशोक के वंश के लोप होने के साथ २ बौद्ध मत भी अपने ऊंचे स्थान से नीचे लुढ़क पड़ा। यदि बौद्ध धर्म पुनः अपने को धार्मिक परिधि के अन्दर सीमित कर लेता तो इस क्रांति की अग्नि में झुलसकर भी वह अपने समकालीन जैन धर्म की भांति भारत में बनी रहता और उसका

समूल लोप न होता परन्तु थोड़े दिनों के राज्य भोग ने बौद्ध धर्म की रूप रेखा ही बदल डाली थी। वह अब भगवान तथागत के उच्च सिद्धांतों पर चलने वाले धार्मिक पुरुषों के समूह से बदल कर पाखण्डियों व रंगे स्यारों का जमघट मात्र रह गया था जो अपने निम्न स्वार्थ के लिये ही भगवान बुद्ध की पग २ पर दुहाई देते थे और राज्य भोग को प्राप्त करने के लिये बड़े से बड़ा पाप करने को उद्यत थे। उन्होंने राष्ट्रीयता को छोड़-कर देश द्रोहता का मार्ग अपनाया और मध्य एशिया की उन बर्बर जातियों का आश्रय ढूंढ़ा जो अशोक के धर्म प्रचार के फलस्वरूप बौद्ध धर्म तो स्वीकार कर चुकीं थीं, परन्तु जिन्होंने अहिंसा, दया आदि अच्छे सिद्धांतों का न तो स्पर्श करना उचित समझा था और न अपनी क्रूरता व आक्रमण-कारी प्रवृत्ति को बदलने की आवश्यकता ही अनुभव की थी। चन्द्रगुप्त व चाणक्य का आतंक भी बीते युग की बात थी। इसके विपरीत जब उन्होंने अहिंसा के आवरण में लिपटे शांति के दूतों को "सद्धर्मी" कहकर अपने स्वागत में हाथ फैलाते देखा तो वह भारत में धंस पड़े। इन राष्ट्र शत्रुओं के साथ जुड़ा बौद्ध नाम तथा इन असभ्य विदेशियों के साथ भारतीय बौद्धों की सहानुभूति व गठबंधन देख कर जनता की घृणा में उबाल आ गया और वह राष्ट्रीय प्रतिहिंसा में बदल गई जिसमें न केवल विदेशी आक्रमणकारी ही जल मरे वल्कि उनके साथ उस बौद्ध धर्म की जड़ें भी भारत भूमि से उखाड़ फेंकी गईं

जो भारत की ही उत्पत्ति था किंतु अपने विदेशी विस्तार एवं विकृत सिद्धांतों के कारण भारत की राष्ट्रीय परम्परा से टकराने लगा था।

हिंदुओं का शक और हूणों के साथ संघर्ष अत्याधिक भयावना इसी कारण था कि उन्हें एक साथ भीतरी और बाहरी दोनों मोर्चों पर राष्ट्र की रक्षा के निमित्त युद्ध करना पड़ा। जिस समय बौद्धों ने राष्ट्र की जड़ों को खोखला कर डाला था और उनकी अहिंसा व विश्व बंधुत्व के बोझ से दबकर राष्ट्र का ढांचा चरमरा कर टूटने को था तभी अपने युग का सबसे विनाशकारी तूफान अपनी सम्पूर्ण आसुरी शक्ति के साथ भारत पर झपटा। सर्वप्रथम बड़ २ राष्ट्रों को अपने जबडों में पीसतीं हुईं शक टोलियां वायुवेग से हिंदुस्थान की ओर अग्रसर हुईं। उन्होंने समस्त उत्तरी भारत को रौंद डाला और उनकी सेनाएं गुजरात, तक जा पहुँचीं। भारत के इतिहास में शक युग अन्धकार का युग था। राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं अस्तित्व एक पतले तार से लटक रहा था। चारों ओर शक झंझावात प्रवल वेग से वह रहा था और उसके बीच में झिलमिला रही थी राष्ट्रीयता की पवित्र ज्योति। हिंदू अनेक युद्धों में पराजित हुये परन्तु उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता का परित्याग नहीं किया और न राष्ट्र स्वातंत्र्य संग्राम में अणुमात्र शैथिल्य ही आने दिया। हिंदू हुतात्माओं ने आगे बढ़कर अपनी आहुतियां दीं और राष्ट्र की आत्मा को अपने रक्त से धोकर दासता की कलंक-कालिमा से कलुषित होने से बचाया

एक ओर शकों ने हिंदुत्व को अपने फौलादी शिकञ्जों में कसकर मसल डालना चाहा -दूसरी ओर हिंदुओं ने अपनी अप्रतिम दृढ़ता का परिचय दिया। मिट्टी फैंकने से ज्वालामुखी का विस्फोट नहीं रुका करता और न उस प्राकृतिक अनंत अग्नि भण्डार का मुख मनुष्य कृत ढक्कन लगाकर ही रोका जा सकता है। समुद्र के बीच जिस तरह ज्वालामुखी का अचानक विस्फोट होता है और जितना ही पानी उसे बुझाने की चेष्टा करता है उतना ही अग्निवर्षण बढ़ता जाता है जो अथाह जल राशि को चीरता हुआ सतह के ऊपर ही आकर शांत होता है उसी तरह दमन और अत्याचार से राष्ट्रीयता के उबाल को दबाया नहीं जा सकता। इसी सनातन सत्य को इतहास ने पुनः दोहराया हिंदुओं का शताब्दियों तक का प्रतिरोध और बलिदान मूर्तिमान हो उठा जब कि महाराज शालिवाहन ने द्वितीय विक्रमादित्य बनकर शकों को अगणित युद्ध क्षेत्रों में कुचल डाला। उन्होंने भारत माता की छाती पर खड़े विदेशी शक शासन की धज्जियां उड़ादीं और अपनी इस महान विजय के उपलक्ष में विक्रमी संवत चलाया जो आज भी हिंदू राष्ट्र की अमरता का अमर स्मारक बन कर प्रचलित है।

शकों को तृण समूह तुल्य भस्म कर हिंदू राष्ट्र का अग्निवर्षण धीरे २ शांत हो गया। फिर से कुछ शताब्दियां उड़तीं हुई निकल गईं! आंतरिक राज विप्लव हुये। पुराने राजवंशों को उलट कर नवीन राजवंशों की स्थापना हुई। उधर मध्य एशिया

में हूणों ने अंगड़ाई ली। जहां उनके एक सेनापति ऐटिला ने बड़ी २ सेनाओं को तिनके के समान उड़ाकर योरुप को रौंद डाला वहां उनकी दूसरी टुकड़ी तूरामन के नेतृत्व में भारत में घुस पड़ी। उन्होंने पंजाब पर अधिकार कर लिया और पच्छिमी भारत में फैल गये। सन ४६६ ई० में उन्होंने मालवा जीत लिया और उनका फैलाव नर्वदा तक हो गया। कुछ समय तक स्कंद गुप्त ने हूणों की असंख्य सेना का मथन किया, परंतु अंत में विना नाक वाले नाटे अनार्यों के प्रवाह में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का गुप्त साम्राज्य भी डूब गया और उसके साथ डूब गया हिंदू धर्म-हिंदू राज्य और हिंदू देश हिंदुस्थान। हूणों की क्रूरता देखकर स्वयं क्रूरता ने भी आंखें बंद करली—और ऐसा प्रतीत होने लगा कि भगवान राम और भगवान कृष्ण का पवित्र राष्ट्र विलुप्त हो जायगा।

परंतु सबसे काली रात्रि में ही तो भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था और भयंकर राष्ट्र संकट काल में ही तो भगवान राम ने प्रकट होकर राक्षस राज रावण के हाथों से राष्ट्र स्वातंत्र्य लक्ष्मी सीता का उद्धार किया था। रक्त-बीज सदृश असंख्य शत्रु सैन्य को चाट जाने वाली अमर हिंदू शक्ति का ही तो नाम दुर्गा है। जिस राष्ट्र के पुरुष दधीचि बनकर राष्ट्र रक्षा के निमित्त अपनी अस्थियां दान कर दिव्य वज्र निर्माण करने की क्षमता रखते हों, जिस राष्ट्र की देवियाँ अग्नि सिखा के स्वर्ण शिखर पर बैठ कर स्वर्गारोहण करने की दिव्य शक्ति से विभूषित हों

ऐसे राष्ट्र को कौन मेट सकता है। लहरों की टक्कर से रेत के घरौंदे फूटा करते हैं पत्थर की काली कठोर चट्टानें नहीं। उनसे तो टकराने पर लहरें स्वयं ही टूट जाती हैं। वह राष्ट्र जो दिखावट के लिये रेत के समान विभिन्न कणों को लेकर खड़े किये जाते हैं वह विपत्ति के पहिले स्पर्श मात्र से ही खंड २ हो बिखर पड़ते हैं–परन्तु जो राष्ट्र उस पत्थर की भांति हो जो समुद्र के गर्भ में लहरों के निरंतर थपेड़ों के बीच में ही निर्मित हुआ हो और जिसका कमजोर अंश घुलने के बाद केवल कठोर अंश ही शेष रह गया हो उसका एक दो क्या लाखों लहरों के आघात भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हिन्दू राष्ट्र का तो जन्म ही विपत्तियों के समुद्र में हुआ है और भयंकर संघर्षों के हिंडोले में झूलते हुए उसका शैशव व्यतीत हुआ है, उससे तो टकरा कर महाशक्तिशाली अंधड़ उखड़ चुके हैं। हूणों ने इतिहास से कुछ भी सीखने की चेष्टा नहीं की। यदि हिन्दू प्रतिहिंसा से दग्ध रावण की सुनहली लंका सुदूर दक्षिण में समुद्र के बीच मुंह छिपाए पड़ी थी फिर भी उत्तरी सीमान्त के पहाड़ व घाटियां, रक्तरंजित हो ग्रीकों व शकों की छीछालेथन की गाथायें प्रतिध्वनित करती हुई हूणों को सावधान कर रही थीं। यदि हूणों के कान होते तो वह सुनते और यदि आंखें होती तो वह अपने पूर्व आये हुए शकों के आस्तित्व की खोज करते। परन्तु वह तो राजमद में इतने डूबे थे कि आंखों के रहते अंधे और कानों के रहते बधिर थे। उन्होंने गर्व से हिन्दूराष्ट्र पर पदाघात किया जिसने प्रत्युत्तर में

बालादित्य के रूप में अपना तृतीय विक्रमादित्य पैदा किया और उसने बिखरी राष्ट्र शक्ति का गठन करके हिन्दुस्थान से हूणों का चिन्ह तक मिटा डाला।

आज कहां हैं शक और कहां है हूण, कहां हैं दैत्य और कहां हैं दानव। निशाचर व राक्षसों का भी तो कुछ पता नहीं। सभी हिन्दुस्थान की पुण्य भूमि पर अपना २ स्वत्व जमाने आये और सभी ने हिन्दुस्थान को अपने २ दृष्टिकोण से पद-दलित, विभाजित व शासित करने का प्रयत्न किया। शकों ने हिन्दूराष्ट्र की कब्र पर शकस्थान बनाना चाहा तो हूणों ने हिन्दुस्थान में हूणस्थान बनाने का स्वप्न देखा। निशाचर व राक्षसों ने भी अपने २ स्थानों को बनाने के लिये भारत में प्रवेश किया था। परन्तु सभी को हिन्दुओंके प्रबल प्रतिरोधका सामना करना पड़ा और उनकी क्रोधाग्नि में पड़ कर छोटे भुनगों व पतंगों की भांति जल कर भस्म होगये। आज केवल उनकी स्मृति शेष बची है, वह भी केवल इसीलिये कि हिन्दुओं ने अपनी घृणा प्रदर्शित करने के लिये रहने दिया है। आज हिन्दू प्रतिवर्ष रावण का पुतला जलाते हुये विजया दशमी मनाते हैं, वह होलिका दहन करते हुये खून की फाग खेलते हैं और कंश घसीटन देखने को भी एक धार्मिक कार्य समझते हैं। हिन्दू मन्दिरों में देवी की प्रतिमा अपने रौद्र रूप में ही प्रतिष्ठित है। वह एक हाथ में तलवार तथा दूसरे में खून से भरा खप्पर तथा गले में शत्रु मुन्डों की माला धारण करने वाली कालिका की आराधना करते हैं। संसार की दूसरी जातियां चाहे

इस पर हंसे तथा उथले मस्तिष्क के लोग "वरडिक्ट आन इण्डियां" या "मदर इण्डिया" लिख कर हिन्दू-राष्ट्र को असभ्य व जंगली बताकर संसार की आंखों में गिराने की चेष्टा करें, परन्तु इसी घृणा और इसी आराधना में हिन्दुस्थान की विशुद्ध राष्ट्रीयता निहित है। दुनियां की दूसरी जातियां कल्पित धर्मों को मानती हैं और कल्पित शत्रुओं को घृणा करती हैं परन्तु हिन्दू-राष्ट्र अपने उन वीरों की पूजा करता है जिन्होंने समय २ पर प्रकट होकर हिन्दुस्थान की राष्ट्रीयता का नेतृत्व किया, और उन शत्रुओं को घृणा करता है जिन्होंने उस राष्ट्रीयता को नष्ट कर हिन्दुस्थान को पददलित व अपमानित करना चाहा। राजसूय यज्ञ करने वाले चक्रवर्ती सम्राट कब और कितने हुए यह हिन्दुओं ने याद रखने का प्रयत्न नहीं किया—बड़े २ वैयाकरणी तथा बड़े २ धर्मज्ञभी हिन्दू राष्ट्र द्वारा पूजित नहीं हुए; ऋषि और महात्माओं को भी अधिक महत्व नहीं दिया गया किन्तु विदेशी लौह श्रृङ्खलाओं से राष्ट्र को मुक्त कराने वाले— विक्रमादित्यों को सदैव के लिये अमर रखने के लिये उसने विक्रमी संवत चलाए। हिन्दुओं का ईश्वर सातवें आसमान पर बैठ कर आलस की जिन्दगी को व्यतीत नहीं करता और न कोढ़ियों व अपाहिजों की कोढ़ खाज ठीक करने के लिये अपने पुत्रों को ही भेजता है। ईश्वर द्वैत है या अद्वैत यह भी व्याख्या करने में हिन्दू-राष्ट्र को दिलचस्पी नहीं। वह तो अपने उस ईश्वर को पूजता है जिसने महा भयंकर राष्ट्र संकट काल में अवतार लेकर

राष्ट्र शत्रुओं का निर्दयता से विनाश किया। बलि को छल से बांध कर पाताल भेजने वाले वामन, हिरनाकुश के पेट को अपने तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण करने वाले नरसिंह, सहस्रबाहु को फरसे से काटने वाले परसुराम, रावण के वंश का समूल नाश करने वाले मर्यादापुरुषोत्तम राम तथा महाभारत के प्रणेता कृष्ण के रूप में ही तो उसने साक्षात ईश्वर को देखा है। ग्रीकों को कुचलने वाले चन्द्रगुप्त, हूणों को मथने वाले स्कन्दगुप्त तथा मुगल काल में राष्ट्रीयता की पवित्र ज्योति को जलाने वाले छत्रपति शिवाजी में ही हिन्दुओं ने अपने भगवान विष्णु और भगवान शिवजी का अंश पाया है। जिस राष्ट्र की जड़ें अतीत में इतनी गहराई तक चली गई हों; जिसके स्वातंत्र्य संग्रामों का पुनीत श्रोत अतीत से लेकर आज तक अबाध रूप से बह रहा हो और जिसके राष्ट्र पुरुषों की शृङ्खला का एक २ ज्योति पुंज अपनी संम्पूर्ण आभा के साथ आज भी हर हिन्दू के हृदय में सुरक्षित हो तथा जिसने अपनी राष्ट्रीयता को सर्वोपरि मान कर उसे ही अपने धर्म का रूप दे डाला हो उसको छोड़कर किसी अन्य नवीन राष्ट्र की भारत में कल्पना करना सबसे बड़ा देश द्रोह है और साथ ही साथ है स्वयं राष्ट्रीयता के प्रति भयंकर विश्वासघात।

३

सातवीं सताब्दी से ही अरब के रेगिस्तानों में एक झौंका उठना आरंभ होगया था जो शीघ्र ही भयंकर बवंडर के रूप में अरब की सीमाओं के बाहर निकला और विशाल साम्राज्यों तथा शक्तिशाली राष्ट्रों को झकझोरता हुआ योरुप, एशिया तथा अफ्रीका पर टूट पड़ा। मिश्र अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के साथ इस झंझावात में समा गया। फारस हलके स्पर्श मात्र से बिखर गया। विजयी तुर्कों ने भी उस तूफान के सामने अपना मत्था टेका। उसके एक हिस्से ने चीन तक के प्रदेश को रौंद डाला और दूसरा हिस्सा रोमन साम्राज्य की धज्जियां उड़ाता हुआ मध्य योरुप में हंगरी के फाटकों से जा टकराया। अफ्रीका को डुबाती हुई इस्लामी लहर स्पेन को भी अपने थपेड़ों से बहुत समय तक त्रस्त करती रही। अरब घुड़ सवार तलवारों को सूतते हुए इस्लाम का सन्देश फैलाने को निकले थे और अपने मार्ग में अग्निकांड, रक्तपात और विध्वंश को छोड़ते हुए चारों ओर बढ़ रहे थे।

हर तरफ से शक्ति बटोरता हुआ यह इस्लामी बवंडर भारत की ओर भी बढ़ा। मुहम्मदी तलवार की चोट खाकर हिन्दुकुश की पहाड़ियां छिटक कर अलग जा पड़ीं। अफगानिस्तान ने भी अपने को इस्लामी चरणों में लिटा दिया। सिन्धु नद की लहरों ने अपने उस पार के प्रदेश को इस्लामी प्रभुता स्वीकार करते देखा, परन्तु जब इस्लाम की तलवार सिंधु नद के इस पार हिन्दू राष्ट्र से आकर टकराई तो उस विश्व विजयनी तलवार की भी धार लौट गई। यदि उसे आरम्भ काल में कुछ सफलता मिली तो भी केवल इसीलिये कि भगवान राम के भारत और १२ वीं सदी के भारत में महान अन्तर था। भगवान राम के समय राष्ट्रद्रोही आत्माएं हिन्दुस्थान में पैदा न होकर विभीषण बन कर हिन्दू के शत्रुओं में ही उत्पन्न होतीं थीं और इसीलिये राष्ट्र शत्रुओं के ही पतन का कारण बनती थीं। परन्तु अब उसी राष्ट्रद्रोही आत्मा का हिन्दुस्थान में उत्पन्न होना आरम्भ होगया था ।तक्षशिला के राजा आंभी के रूप में विभीषण की आत्मा ने प्रकट होकर ग्रीक सैन्य को भारत में घुसने का अवसर दिया और उसके नष्ट होते ही चन्द्रगुप्त मौर्य ने बिना अधिक प्रयास के ग्रीकों को पराजित कर डाला। महाराज पृथ्वीराज से भी १७ बार मुसलमानी सेना ने हार खाई, परन्तु १८ वीं बार जब राष्ट्रघाती जयचंद ने विभीषण बन कर हिन्दू राष्ट्र की पीठ में पीछे से छुरी भोंक दी तो भारत में मुसलमानों के पैर जम गये! फिर भी हिन्दुस्थान के राष्ट्र और उसकी शुद्ध हिन्दू राष्ट्रीयता

का रूप विकृत न हो पाया क्योंकि उस समय तक आजकल की भांति मुसलमानी राज्य को भी स्वराज्य मानने वाले भारत में उत्पन्न न हुए थे और न इनकी तरह उस समयके हिन्दू अपने को हिंदू कहने में ही शर्माते थे। उन्हें तो अपने महान पूर्वजों पर गर्व था। हिन्दू स्त्रियों के सामने भगवती दुर्गा व भगवती सीता का आदर्श था। अतः स्वधर्म और स्वराज्य के लिये हिन्दुस्थान भर में राष्ट्रीयता की अग्नि धधक उठी। पुरुषों ने स्वतंत्रता महायज्ञ में आहुतियां चढ़ाईं और स्त्रियों ने अपने को जलती चिताओं में झोंक कर हिन्दू राष्ट्र की विशुद्धता की अग्नि परीक्षा दी। सिन्धु नद के किनारे महाराज जयपाल की चिता धधकने के साथ साथ हिन्दुस्थान के कोने २ में आकाश रक्तवर्ण हो उठा। महाराज पृथ्वीराज, सिन्धुराज दाहिर, सती कर्ण सदस अगणित वीर और वीराङ्गनाएं एक के बाद दूसरे बढ़कर सामने आये और अपने खून से जयचंद के पाप का कलंक भारत मां के माथे से धोते रहे। मुसलमानों ने जितना ही जोर मारा उतना ही हिन्दूराष्ट्र का प्रतिरोध भीषण होता गया। यदि मुसलमान हिन्दुत्व की ज्वाला को एक स्थान पर दबाते तो वह शीघ्र ही दूसरे स्थान पर फूट निकलती, १६००० क्षत्राणियों के साथ महारानी पद्मिनी ने राष्ट्र स्वतंत्रता महायज्ञ में अपनी आहुती दी और दासता के घनघोर अन्धकार को भेदती हुई उसकी चिता की चिनगारियां बहुत समय तक उठती रहीं। उत्तर का यह विस्फोट शान्त न हो पाया था कि दक्षिण में मुसलमानी

फैलाव को रोकने के लिये विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य के रूप में हिन्दुत्व की ज्वाला धधक उठी। इस निरंतर प्रतिरोध से टकराती हुई इस्लामी सत्ता लड़खड़ा रही थी और यही कारण था कि दिल्ली के सिंहासन पर कोई भी एक वंश का शासन अधिक दिन तक स्थायी रूप से नहीं चल पाता था। कभी लोदी कभी सय्यद, कभी तुगलक, कभी खिलजी एक के बाद दूसरे वंश नवीन शक्ति संचय करके दिल्ली के सिंहासन पर चढ़ते और थोड़े समय बाद ही हिन्दू प्रतिरोध से घुन कर लुढ़क पड़ते। तैमूर के आक्रमण का उद्देश्य भी भारत में इस्लामी सत्ता को साधना ही था। उसके मंगोल टिड्डी दल ने पुनः हूणों की क्रूरता व वर्बरता की पुनरावृत्ति की; हिन्दुओं का सामूहिक कत्लेआम करके उसने राष्ट्रीय प्रतिरोध को तोड़ना चाहा परन्तु वह भी असफल रहा; थोड़े दिन बाद बाबर ने अपने मुगलों को लेकर जर्जरित लोदी वंश को स्थानान्तरित कर राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति में दिल्ली के सिंहासन को डूबने से बचा लिया। हुमायूं को उखाड़ कर अफगान सामने आये और जब अफगानों के अंतिम सम्राट आदिलशाह के हाथ भी कमजोर पड़े और हैमू के हिन्दू हाथों में साम्राज्य की बागडोर पहुँच गई तो मुगल फिर भारत पर बरष पड़े। हिन्दू राष्ट्र ज्वालामुखी अपने सहस्र और लक्ष मुखों से अबाध रूप से अग्नि वर्षण कर रहा था और हिन्दू हुतात्माओं के खून में इस्लामी सत्ता डूबने को ही थी कि अचानक जयचंद की आत्मा भारत में मानसिंह बन कर प्रकट हुई।

जयचंद के रूप में जिस घातक अराष्ट्रीय विष को उसने राष्ट्र के शरीर में प्रविष्ट कराया था उसी को चिरस्थायी बनाकर राष्ट्र हत्या करने के लिये मानसिंह के रूप में राष्ट्रद्रोहता ने साकार रूप धारण किया। सिकंदर का स्वागत करने वाले तक्षशिला के राजा आंभीक और मुहम्मदगोरी को बुलाने वाले जयचंद इन दोनों के रूप में राष्ट्रद्रोहता निश्क्रिय थी। उन्होंने शत्रुओं को सहायता अवश्य दी थी परन्तु भारत माता के शरीर पर आघात करके मातृघाती नहीं बने थे। परन्तु मानसिंह इन दोनों से बहुत आगे बढ़ गया उसने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति के लिये सक्रिय रूप से राष्ट्र पर आघात किया।

मानसिंह के कारण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक नये एवं ऐसे पेचीदा युग का सूत्रपात हुआ जिसने राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता के तारों को इतना उलझा दिया कि ऊपरी दृष्टि से दोनों में भेद समझना कठिन होगया। अभी तक भारत में मुसलमान विदेशी रूप में ही थे; उनका सिंहासन मुट्ठी भर विदेशी मुसलमान संगीनों पर हीं सधा था। हिन्दू युद्ध क्षेत्रों में अवश्य पराजित हुये थे पर उन्होंने मुसलमान सुल्तानों के साथ किसी प्रकार का सहयोग नहीं किया था बल्कि उनको विदेशी शत्रु मान कर सदैव घृणा ही की थी और जहां और जब थोड़ा सा भी अवसर मिलता था वह मुसलमानी सत्ता को उखाड़ डालने का प्रयत्न करते। इस हिन्दू प्रतिरोध के कारण भारत में मुसलमानी शक्ति का निरंतर ह्रास होता रहता था। मुगल काल के

पहिले दिल्ली के सिंहासन पर किसी भी वंश का शासन स्थायी न होने का प्रधान कारण यही था। मानसिंह के सहयोग ने मुसलमानी शासन के इस अराष्ट्रीय व आक्रमणकारी रूप को बहुत अंशों में छिपा लिया जिससे राष्ट्र की छाती पर खड़े विदेशी साम्राज्य को उखाड़ने के स्थान पर हिन्दुओं का खून उसकी रक्षा करने व उसे बढ़ाने में बहाया जाने लगा। पहिले जो हिन्दू शौर्य की लहर दिल्ली से आकर टकराती थी और विफल होने पर भी हरबार सत्ता की नींव को कमजोर कर डालती थी वही अब मानसिंह की नकली राष्ट्रीयता की भूल भुलैयों में पड़ कर मुसलमानी झंडा लिये अपने ही देश वासियों को डुबाने लगी।

ऐसा युग किसी भी राष्ट्र के लिये अत्यन्त भयावना होता है जब कि शत्रु और मित्र की पहिचान करना ही कठिन होजावे और घर के भेदी के सहयोग से शत्रु छद्मवेश बना कर घर में घुसने में सफल होकर उसमें ही अव्यवस्था पैदा करके चरित्र बल तोड़ दे। मानसिंह के समय पहिली बार ऐसा हुआ। उसके सहारे विदेशी यवन छद्मवेश से भारतीय राष्ट्र दुर्ग में प्रवेश पाने में सफल हुए और उसके अन्दर ऐसी अव्यवस्था पैदा करदी कि बहुत से हिन्दुओं के मुंह से "दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा" का उच्चारण होने लगा और वह हिन्दू ललनाएं जिन्होंने आग में जल कर राष्ट्र की पवित्रता की रक्षा की थी अब मुगल हरमों में प्रवेश पाने लगीं।

अकबर का शासनकाल हिन्दू राष्ट्र के लिये शक और हूण काल से कहीं अधिक भयावना था। राष्ट्रीयता की वह प्राचीर

जिसके पीछे आश्रय लेकर हिन्दुओं ने युग २ में विदेशियों के विरुद्ध अपना शक्ति संचय किया था, अकबर की कूटनीति व मक्कारी से करीव २ टूट चुकी थी। जिस हिन्दू चरित्र बल को खिलजी व तैमूर की क्रूरता किंचित मात्र स्पर्श न कर सकी थी अकबर की "माला व तिलक" से धीरे २ छिन्न भिन्न हो रहा था। अपने असली रूप में लक्ष्मण द्वारा खींची गई परिध को उलंघन करने में असमर्थ मान कर मायावी रावण ने साधु का रूप धारण कर राष्ट्र लक्ष्मी सीता को छल से हरण करके लंका लेगया था किन्तु आज मुगलों का मायावी रावण "माला व तिलक" के सहारे राष्ट्रीयता की सभी सीमाओं का उल्लंघन करके राष्ट्र दुर्ग में स्वच्छन्दता पूर्वक घुसा हुआ हिंदुओं की आंखों के सामने, उनके ही तलवारों की छाया में, राष्ट्र लक्ष्मी का हरण नहीं वल्कि उसकी हत्या करने में लगा था।

राष्ट्र शत्रु और राष्ट्र द्रोही का इतना प्रवल गठवन्धन देख कर भी हिन्दू राष्ट्र ने हतप्रभ होकर आत्म समर्पण नहीं किया वल्कि उसका प्रतिरोध और भी कड़ा होगया। उसने राणा प्रताप के रूप में अपने को मूर्तिमान कर राज्य सिंहासन को ठोकर लगा अर्वली की उपात्यकाओं में स्वधर्म और स्वराज्य का जयघोस किया। हल्दीघाटी के मैदान में राणा की हार और मानसिंह की जीत अवश्य हुई परन्तु उस युद्धक्षेत्र में पड़े हुये २२ हजार राजपूतों की हड्डियों से हिन्दू राष्ट्र के आस पास ऐसी सुदृढ़ प्राचीर खड़ी होगई जिसको अकवर की कूट-

नीत और मानसिंह की राष्ट्रद्रोहता दोनों भेदन न कर सकीं।

झूठी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता की यह पहिली टक्कर थी और दोनों का प्रतिनिधित्व करने के लिये दो व्यक्ति इसी लिये उपस्थित थे जिससे आगे आने वाली संतति के सामने राष्ट्रीयता की परिभाषा को तोड़ा मरोड़ा न जा सके। मानसिंह हिन्दुओं के साथ अराष्ट्रीय तत्व मुसलमानों को मिलाकर दोगले राष्ट्र का निर्माण करना चाहता था और उसकी इस नकली राष्ट्रीयता के पीछे हिन्दू मुस्लिम ऐकता की ओढ़नी ओढ़े दासता झांक रही थी। इसके विपरीत राणा प्रताप उस शुद्ध हिन्दू राष्ट्रीयता के पक्षपाती थे जिसके पीछे अगणित हुतात्माओं के रक्त में स्नान करने वाली भारतीय स्वतंत्रता खड़ी थी। मानसिंह के पीछे विभीषण, आंभी और जयचंद का काला इतिहास था और राणा के पीछे थीं भगवान राम, भगवान कृष्ण, विक्रमादित्य तथा चिता की चिनगारियों पर चढ़ कर स्वर्गारोहण करने वालीं देवियों की तेजस्वी मूर्तियां। मानसिंह के रूप में नकली राष्ट्रीयता राष्ट्र शत्रुओं के हाथों में स्वातंत्र्य लक्ष्मी बेचकर महलों के सुख और वैभव भोग रही थीं और राणा के रूप में राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य लक्ष्मी के लिये सर्वस्व त्याग कर जंगलों में घास की रोटियां खा रही थी। यदि मानसिंह का स्वप्न सफल होजाता और विदेशी यवनों को स्वदेशी मान कर हिन्दू अपना प्रतिरोध त्याग कर देते तथा यदि राणा के रूप में हिन्दूराष्ट्र अग्नि प्रस्फुटित होकर हिन्दुओं का पथ प्रदर्शन न करती तो आज हिन्दुत्व अंवशेष भी न रहता

और हिन्दुस्थान भगवान राम व भगवान कृष्ण की लीलाभूमि न होकर अरबों, तुर्कों व मुगलों का क्रीणास्थल बन जाता।

हिन्दू राष्ट्र वाद की वह ज्योति, जो पहाड़ों को भी जड़ से उखाड़ फेंकने वाले अंधड़ों के भीषण थपेड़ों को अनेकों वार झेल चुकी थी मुसलमानी काल में भी क्रूरता, कूटनीति और दानवता के बीच जलती ही रही और अधिक समय नहीं बीतने पाया जब कि यह पवित्र राष्ट्र अग्नि हुतात्माओं के रक्त की आहुतियां पाकर असंख्य श्रोतों में भारत के कण से फूट निकली और विदेशी मुगलों के उस युग के सबसे शानदार व शक्तिशाली साम्राज्य को जलाना आरम्भ कर दिया।

औरंजेब का शासन जब कि राष्ट्र शत्रु लक्ष २ देव मन्दिरों के भग्नावेशों व कोटि २ हिन्दुओं की हड्डियों को अपने नीचे दबाये सफलता व गौरव के सबसे ऊंचे शिखर पर खड़ा होकर समूचे भरतखण्ड पर इस्लाम का हरा भन्डा फहराता हुआ देख रहा था और जब कि हिन्दू पतन व पराजय की सबसे नीची सीढ़ी पर खड़ा होकर अपने चारो ओर फैले हुए निराशा के घटा-टोप अंधकार में डूबने को ही था; जब कहीं भी आशा की क्षीण ज्योति भी दिखलाई न देती थी, यही समय हिन्दू राष्ट्र ने अपने प्रत्याक्रमण के लिये चुना। रूस पर जर्मन आक्रमण तथा बिजली की तेजी के समान उसकी सुगठित सेनाओं का फैलाव; रूसी प्रतिरोध और फिर पलट कर उसका प्रत्याक्रमण आधुनिक युग के आक्रमण व प्रत्याक्रमण के महत्तम उदाहरण हैं परन्तु रूस

जर्मन संघर्ष हिन्दुओं द्वारा किये गये मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ संघर्ष की तुलना में नगण्य प्रतीत होने लगता है। रूस जर्मन संघर्ष का समय केवल चार साल था और रूसियों के पास उनका लेनिनग्राड, मास्को, तैलक्षेत्र काकेशिया तथा यूराल का शक्ति केन्द्र सुरक्षित था। साइवेरिया का विशाल क्षेत्र भी उनके पास था जहां से वह शक्ति प्राप्त कर सकते थे। इसके साथ र रूस के पास उसे रण सज्जा से सजाने के लिये इङ्गलेन्ड व अमरीका सदृश अति शक्तिशाली मित्र राष्ट्र भी तो थे। लेकिन हिन्दू राष्ट्र को तो नाजी तूफान से भी अधिक भयंकर इस्लामी तूफान की सहस्रों धाराओं का निरंतर ७०० वर्षों तक सामना करना पड़ा और वह भी ऐसी निस्सहाय अवस्था में जब कि न उनके पास मास्को था; न स्टेलिनग्राड, न काकेशिया था और न यूराल की तरह सुरक्षित शक्ति का केन्द्र। उसके पास कोई ऐसा मित्र भी तो नही था जो दो चार सान्त्वना के शब्द भी कहता। भारत की इंच भूमि पर शत्रु का अधिकार होचुका था और हिन्दू राष्ट्र की गर्दन को दबाये हुए राष्ट्र-शत्रु उसके प्राणों को खींच रहा था। इस घनघोर संकट काल में हिन्दू राष्ट्र ने अपने भीतर संचित अदभुत साहस; अपूर्व दृढ़ता एवं अश्रुतपूर्ण वलिदान की भावना को ही अपना मास्को, अपना काकेशिया और अपना शक्ति केन्द्र यूराल बनाया जिससे सज्जित हो हिन्दुस्थान का प्रत्येक राष्ट्रीय घटक हिन्दू भारत का अभेद्य स्टेलिनग्राड बन गया। उसने सैंकड़ों युद्धों में पराजित होने पर भी

पराजय स्वीकार नहीं की। उसने अपने नगरों का विध्वंश होते देखा, उसने मन्दिरों को गिरते देखा, अपनी देव प्रतिमाओं को टूटते देखा, और देखा अपने धर्म ग्रन्थों को जलते! उसकी आंखों के सामने ही उसके दुध मुंहें बच्चे दीवालों में चुन दिये गये, उसकी मातायें बहिने आग की लपटों में जल गईं और समस्त भारत भूमि रक्त से प्लावित हो उठी। परन्तु आत्म समर्पण तो दूर; हिन्दूराष्ट्र ने कभी समझौते के लिये हाथ नहीं बढ़ाया और बार २ शत्रु पर भीषण प्रत्याक्रमण किये। संसार ने आश्चर्य से देखा कि जिस इस्लामी बाढ़ ने संसार के बड़े २ राष्ट्रों को डुबा दिया था उसके भीषणतम थपेड़ों को झेलते हुए भी हिन्दूराष्ट्र ने निरंतर युद्ध किया। गजनवी, गोरी, खिलजी, तैमूर और औरंगजेब एक से बढ़ कर एक खूंखार शासक हिन्दुस्थान की राष्ट्रीय आत्मा को कुचलने के लिये अपने दल बादल को लेकर आये परंतु हिन्दुओं को दबाने में सर्वथा असमर्थ रहे।

७०० वर्ष तक निरन्तर पीछे हटने के बाद हिन्दू राष्ट्र का प्रत्याक्रमण आरम्भ हुआ और अपने युग २ के इतहास को दुहराते हुए तथा—"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवत भारत"...की अमर वाणी को सत्य करने के हेतु, दूर दुर्गम महाराष्ट्र की पहाड़ियों में राष्ट्र संगठन-शक्ति शिवाजी के रूप में प्रकट हुई और साथ ही साथ उनका पथ प्रदर्शन करने के लिये वहीं उदय हुई समर्थ रामदास के रूप में विश्वामित्र और चाणक्य की आत्मा।

प्रारम्भ में किसी को भी यह आशा नहीं थी कि जहां राणा सांगा और प्रताप सदृश शक्ति सम्पन्न राजा असफल हुए और जहां विजयनगर से साम्राज्य धराशायी होगये वहां गेरुआ कोपीन धारी साधु तथा उनका शिष्य शिवाजी अपने मुट्ठी भर मावलों को लेकर कैसे सफल होगा और विशेष कर उस आलमगीर के विरुद्ध जो छल बल और क्रूरता का साक्षात अवतार ही था। जिसकी एक मुट्ठी में उत्तरी सीमा पर अफगानिस्तान और दूसरी मुट्ठी में रामेश्वरम के तट को छूने वाली समुद्र की लहर दबी हुई छटपटा रही थी, जिसके जादू में पड़ कर मिर्जा राजा जयसिंह और महाराज जसवन्तसिंह सदृश हिन्दुओं के मान्य नेता अपना सिंह स्वभाव भूल कर पालतू बन गए थे और जिसकी राज्य लिप्सा अपने ही हाड़ मास व खून के बने सहोदर भाई दारा, सुजा व मुराद को समूचा निगल कर भी अतृप्त थी, उसी औरंगजेब के विरुद्ध सफल होना किसी की कल्पना में भी नहीं आसका था। जब केवल १२ ऐसे मरहठा साथियों को लेकर जिनके हाथों में काई लगी तलवारों के सिवा दूसरा अस्त्र भी नहीं था; जिनके पास न दुर्ग था न राज्यकोष, जिनके घोड़ों पर जीने तक न थीं और जो बाजरे की बालों को हाथ से मल कर फंकी लगाते हुए अपनी भूख को घोड़ों की पीठ पर ही शान्त कर लेते तथा बहुत नींद लगने पर या तो भाला को जमीन से टेक कर थोड़ी सी झपकी लेते या कंकड़ों पत्थरों पर गिर कर अपनी नींद पूरी करते, शिवाजी ने हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के लिये

तलवार उठाई वह भी उस शाही सैना के विरुद्ध जो रेशमी तम्बुओं, चमचमाती वर्दियों व भांति २ के अस्त्र शस्त्र व तोपखानों से सज्जित थी, जिसके एक २ सवार के साथ एक २ खिदमतगार व हुक्का-बरदार भी चलता था और जिसके उमड़ते समुद्र में हरम, बाज़ार, शराब, वेश्यायें आदि समस्त ऐशोइशरत का सामान उतराता हुआ बहता चलता, तो औरंगजेब के माथे पर परेशानी के स्थान पर घृणा की हलकी सिकुड़न ही उत्पन्न हुई। राम और लक्ष्मण को "तपसी बालक" कह कर लंकेश रावण ने भी तो ऐसी ही घृणा व्यक्त की थी, और चाणक्य और चन्द्रगुप्त की शक्ति आंकने में विश्व विजयी सिकन्दर की अनुभवी आंखें भी तो धोखा खा गई थीं, फिर यदि तख्त ताऊस पर बैठे हुये लक्ष २ संगीनों के अधिपति आलमगीर ने शिवाजी को "चूहा" कह कर अपनी उपेक्षा दिखलाई तो कौनसा आश्चर्य ! अपने काल को कोई नहीं पहिचानता, विशेषकर तब जब उसकी आंखें वैभव-युक्त अहंमन्यता की चमक से अन्धी होगई हों। रात्रि के काले आवरण को चीरती हुई जब पूर्व में थोड़ी लाली दिखलाई देती है तो कौन कह सकता है कि उस हलकी धूमिलता के पीछे प्रकाश व तेज का अक्षय भंडार छिपा है। औरंगजेब नहीं जानता था और कोई भी नहीं जानता था कि इतहास का पहिया पूरे वेग से उल्टा घूम गया है और शिवाजी का अभ्युदय हिन्दू साम्राज्य का उदय और मुसलमानी साम्राज्य के अस्त होने का द्योतक है। जो हाल खर, दूषण और ताड़का का हुआ था

वही हाल अफजलखां तथा सायस्ताखां प्रभृति मुसलमान सेना-पतियों का भी शिवाजी के हाथों हुआ। मुगल सेनाओं को स्थान स्थान पर काट डाला गया, उनके सेनाध्यक्ष बन्दी बनाए या मारे गये और दुर्गों पर लगे दासता के प्रतीक हरे झन्डे गिरा कर हिन्दूध्वज भगवा फहराने लगे। औरङ्गजेब ने जिन्हें चूहा कहा था उन्हीं चूहों ने मुगल शेर की मांद में घुस कर उसके पैने दांत व नाखून उखाड़ने आरम्भ कर दिये, और इन्हीं "पहाड़ी चूहों" ने मुगलों के नीचे की भूमि इतनी खोद डाली कि मुगलों का चमक-दार साम्राज्य अपने गगनचुम्बी कंगूरों के साथ धसकता हुआ ज़मीन में घुसने लगा। मुगल, पठान, अफगान, तुर्क सभी ने वारी वारी से आकर अपनी तलवारों को पटका, परन्तु हिन्दुओं की चट्टान से टकराकर वह सभी टूट गईं। स्वराज्य और स्वधर्म का जयघोष महाराष्ट्र की कन्दराओं से बाहर निकल कर भारत भर में फैलने लगा और औरंगजेब के "हुकूमते इलाहिया" के अंग प्रत्यंग हिन्दू घुड़ सवारों की टापों से क्षत विक्षत होकर टूट २ कर गिरने लगे। उत्तर में गुरु गोविन्दसिंह के बाज झपटे तो बीच में दुर्गादास राठौर और राणा राजसिंह ने विद्रोह का झन्डा ऊंचा किया, जाटों ने लड़खड़ाते हुये मुगल ढांचे पर जबरदस्त चोट की। निराशा व बार २ की हार से खीज कर विदेशी यवनों ने रही बची मनुष्यता को भी तिलांजलि दे दी। दिल्ली के चांदनी चौक में सिक्ख खून के फौव्वारे छूटने लगे, वन्दा वैरागी का मांस गरम चीमटों से नोचा गया, भाई मतीराम को आरे से

चीरा गया परंतु इस तमाम पाशविकता व अत्याचार ने क्रोधित हिन्दुओं को शांत करने के स्थान पर और भी प्रतिहिंसक बना दिया। गुजरात, मालवा, दोआव में फैलतीं हुई हिंदू सेनाऐं दिल्ली से जा टकराईं, और इनकी बाढ़ में मुगलों का लाल किला, यवन बादशाहों की अतृप्त अभिलाषाओं को लिये सबके देखते २ डूब गया। दिल्ली में कुछ समय तक मुगल नाम चलता रहा परंतु वह भी केवल इसीलिये कि कुछ राजनैतिक कारणों से हिन्दुओं ने उसे चलने दिया। दिल्ली का शाहन्शाह नाममात्र को भी स्वतंत्र नहीं था। वह हिन्दू संगीनों से रक्षित एक कैदी की भांति महाराज सिंधिया की पेन्शन पर ही गुजर करता था।

ऐतिहासिक सत्य यही है कि हिंन्दुओं ने मुसलमानी साम्राज्य की धज्जियां उडादीं थीं और अंग्रेजों ने हिन्दुस्थान का राज्य मुसलमानों से नहीं वलिक हिन्दुओं से ही पाया है। सन् १७०० का नकशा देखने से पता चलता है कि समस्त भारत मुसलमानी साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुका था। काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तक तथा गुजरात से आसाम तक सारा हिन्दुस्थान, पाकिस्तान में परिणित होगया था। लेकिन १८ वीं शताब्दी का नक्शा हिन्दुओं के आश्चर्य जनक पुनरुत्थान का प्रमाण है। मुसलमानी साम्राज्य बुलबुले की भांति फूट गया था और उसकी कब्र पर हिन्दू साम्राज्य धीरे २ उठ रहा था। पंजाब पर सिक्ख हिन्दुओं का शाशन था, सीमा प्रान्त के पठान हरीसिंह नलवा के पैर के नीचे पड़े कराह रहे थे। राजपूताना में राजपूत हिन्दू शाशक

थे। हिन्दुस्थान के उत्तर पूर्व सीमा पर महाराज नैपाल के नेतृत्व में गुरखा शक्ति का उत्थान हो रहा था और दिल्ली से लेकर अंतरीप तक तथा गुजरात से लेकर उड़ीसा तक मरहठा हिन्दुओं का साम्राज्य अपने नीचे मुसलमानी पाकिस्तान को दबाए शान से खड़ा था। मुसलमान अब भी "अल्ला हो अकबर" का नारा लगाते थे परंतु प्रत्येक युद्ध क्षेत्र में पिटते २ उन्हें संदेह होने लगा था कि हिन्दुओं ने उनके अल्लाह की भी शुद्धि करके उसे हिन्दू बना लिया है। हिन्दू प्रतिहिंसा का तूफान गर्जता हुआ समस्त भारत में बह रहा था और उसके थपेड़े खाकर मुसलमानी राज्य के बचे खुचे चिन्ह भी उखड़ रहे थे। निज़ाम भोपाल, अवध के वजीर व बंगाल के नबाब यह दो चार चिराग़ जो टिमटिमा रहे थे वह भी स्वतंत्र रूप से नहीं बल्कि केवल इसीलिये कि इन्होंने मरहठों की अधीनता स्वीकार करली थी और उनके सामने मत्था टेक कर चौथ और सरदेश मुखी देना स्वीकार कर लिया था। मुसलमानों के हाथों में इतनी भी शक्ति बाकी नहीं रही थी कि वह राजदंड संभाले रहते, उनके हौसले पस्त होचुके थे, उनकी हिम्मत टूट चुकी थी और उनकी आशाएं अन्तिम हिचकी लेतीं हुई मर चुकीं थीं।

यदि कहीं कुछ आशा की हलकी रेखा दिखलाई देती थी तो वह यह थी कि शायद भारत के बाहर से कोई यवन आक्रमणकारी नई शक्ति के सहारे बुझते हुये मुसलमानी चिराग की लौ को कुछ दिन और संभाले। ऐसा अनेकों बार हुआ भी था। मुसलमान

शक्ति का आदि श्रोत तो भारत के बाहर ही था और वहीं से वह सदैव नई शक्ति का संचय तथा क्षति की पूर्ति दोनों ही किया करते थे। विपत्ति काल में उसी ओर उनकी आंखें भी उठतीं थीं। अकबर की कूटनीति में फंसकर हिन्दू बहुत दिनों तक मुगल साम्राज्य का बोझ अपने कन्धों पर उठाये रहे और उनके विरोध के अभाव में मुगल शक्ति का क्षय नहीं हुआ! अतः इस काल में भारत के बाहर की ओर दृष्टि उठाने की मुसलमानों को आवश्यकता भी नहीं हुई, परन्तु जब अकबर द्वारा पिलाया गया नशा दूर हुआ और हिन्दुओं का दबा हुआ प्रतिरोध जाग उठा तो मुसलमानों ने अपने सीमान्त पार के सहधर्मियों से पुनः सहायता मांगी। नादिरशाह के आक्रमण का यही कारण था। वह चुनी सेना के साथ तूफान की भांति भारत में घुसा, दिल्ली में उसका स्वागत हुआ। मुहम्मदशाह के साथ पगड़ी भी बदली गई, और "काफिर मरहठों" को कुचलने की योजना बनी, पर नादिरशाह अनुभवी और दूरदर्शी था। उसकी तेज दृष्टि से भारत की वस्तु स्थिति छिपी न रह सकी। मुहम्मद गोरी के समय के जयचंद व अकबर के युग के मानसिंह भारत में उसे कहीं न दिखलाई पड़े जो उसको भारत में पैर जमाने में सहायता देते और उनके अभाव में हिन्दुओं पर विजय पाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव था। और हिन्दू भी कैसे ? राष्ट्रीयता से पथभृष्ट, संस्कृत से विच्छिन्न, तथा बार २ की पराजयों से निराश, श्रीहीन एवं हतोत्साह नहीं बल्कि जो स्वधर्म और स्वराज्य की उमंगों से उद्वे-

लित, होकर युग २ की राष्ट्रीयता के अथाह समुद्र को अपने हृदय में समेटे, हिमालय की भांति अडिग, किन्तु वायु के समान गतिवान हो, विजय पथ पर निरंतर आगे बढ़ रहे थे। जब शिवाजी ने मुट्ठी भर ऐसे साथियों को लेकर मुगल साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा दी थी फिर आज तो उनकी संख्या लक्ष २ तक पहुँच चुकी थी और उनका नेतृत्व चतुर्थ विक्रमादित्य वाजीराव पेशवा के हाथ में था जिसने टिड्डीदल की संख्या, चीटियों का सैनिक अनुशासन और सिंहों का शौर्य सभी को एक साथ मिलाकर हिन्दू शक्ति को अमोघ, अजेय व अभेद्य बना दिया था और जो भारत भर में, अहिन्सा का नहीं, वल्कि, तलवारों का ऐसा लौह जाल बुनने में व्यस्त था जिसको कोई भी राष्ट्र-शत्रु कभी भी भेदन न कर सके। यह ठीक था कि मुसलमान उसके साथ खड़े होने को उसी भांति तैयार थे जिस तरह लोदी वंश के पतन के समय बावर के साथ खड़े हुये थे परंतु उनके सहयोग व सहायता का कितना मूल्य है यह नादिरशाह उनके साथ हलकी मुठभेड़ के बाद अच्छी तरह जान चुका था और इन घुनी लकड़ियों के सहारे जो बिना बोझ के अपने आप ही टूट रही थीं वह पेशवा के फौलादी जाल से टकराने को तैयार न था अतः मुसलानों के आश्वासनों पर वह भारत में किसी भी कीमत पर ठहरने को तैयार न हुआ। जब उसने सुना कि उसे भारत से निकालने के लिए मरहटा सेना दक्षिण से चल पड़ी है तो वह जितनी शीघ्रता से भारत में आया था उससे भी अधिक

शीघ्रता से नदियों, मैदानों व पहाड़ों को लांघता हुआ वापस भागा। मुसलमानों का इस दिशा में अन्तिम प्रयत्न अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण था। मलका जमानी तथा रुहेला अफगान नजबखां ने काफिर मरहठों से मुसलमानी साम्राज्य को बचाने के लिये अब्दाली को बुलाया और उनके हिलते हुये ढांचे को साधने के लिये उसने बार २ आक्रमण किये। परन्तु प्रत्येक बार वह भारत में अपने पैर जमाने में असफल रहा। अपने अंतिम आक्रमण में पानीपत के युद्धक्षेत्र में यदि उसको विजय मिली भी तो उसका मूल कारण मुसलमान सेना की वीरता या हिन्दू सेना की शक्ति हीनता नहीं वल्कि एक थोड़ी सी गलती थी जो हिन्दुओं की ओर से की गई थीं। मुसलमानों ने अब्दाली के नेतृत्व में मुस्लिम संघ का निर्माण किया और भारत के प्रत्येक छोटे बड़े मुसलमान नवाव ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इस निर्णायक युद्ध में अब्दाली की ओर से झौंक दी। फिर भी मरहठों की अकेली शक्ति इस सम्मिलित संघ की कसर तोड़ने को पर्याप्त से भी अधिक थी अतः मुसलमानों ने एक चाल चली। कई सौ पठान मरहठा सेनापति भाऊ के पास आये और हिन्दुओं की ओर से अब्दाली से लड़ने की इच्छा प्रकट की। विधि का विधान कहें या हिन्दुओं का दुर्भाग्य कि वह सदाशिवराव भाऊ जो शौर्य और वीरता का मूर्तिमान रूप था वह भी इस मुस्लिम प्रपंच व छल से धोखा खा गया और इन पठानों को आश्रय देकर उनकी पहिचान के लिये उनकी पगड़ियों पर केवल भगवा

पट्टी लपेट दीं। यही आश्रय और यही विश्वास अन्त में पराजय व अश्रुतपूर्व भीषण क्षति का कारण बना। जिस समय युद्ध अपनी चरम सीमा पर था और हिन्दुओं की मार के कारण मुस्लिम सेना का व्यूह चूर २ होकर वह भागने को ही थी कि पूर्व निश्चित इशारे के मिलते ही इन पठानों ने अपनी भगवा पट्टी उखाड़ कर फेंक दी और हिन्दू सेना के पीछे लूट पाट और मार काट आरम्भ कर दी। हिन्दुओं ने समझा कि मुसलमानी सेना पीछे से आगई अतः उनमें अव्यवस्था फैल गई और हिन्दुओं की विजय पराजय में बदल गई। अब्दाली को विजय मिली पर जिस हिन्दू प्रतिरोध का उसे सामना करना पड़ा तथा जितना अपार मूल्य उसे इस विजय के लिये चुकाना पड़ा उससे अब्दाली की भी आंखें खुल गईं। पानीपत के युद्ध में मरहठा सेना की हार अवश्य हुई थी परंतु महाराष्ट्र में मरहठे अब भी जीवित थे और अब्दाली को रोकने के लिये स्वयं पेशवा ५०००० सेना के साथ नर्मदा पार करके तेजी से आगे बढ़ रहा था। अब्दाली बुद्धिमान था मरहठों की शक्ति का उसे परिचय मिलचुका था और अब उनके साथ दूसरी मुठभेड़ के लिये वह किसी भी कीमत पर तैयार न था अतः वह, दिल्ली के सिंहासन की ममता त्याग, शीघ्रता से वापस लौटा और अफ़गानिस्तान पहुँच कर भारत की राजनीति में कभी भी हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा करके मरहठों से संधि करली। इस के कुछ समय बाद पंजाब को सिक्खों ने छीन लिया और भारत के उत्तरी पश्चिमी प्रवेश द्वार पर हिन्दू संतरी का पहरा लग गया।

४

उत्तरी पश्चिमी सीमान्त के बंद होजाने पर मुसलमानों की अराष्ट्रीयता ने दूसरा रूप धारण किया। हिन्दुओं का, काल्पनिक डर उन्हें त्रस्त कर रहा था और उनसे बचने के नाम पर मुसलमान प्रत्येक पाप करने को तैयार थे। हिन्दुओं का हिन्दुस्थान का शाशक बनना उन्हें सह्य नहीं था और स्वयं शाशक बने रहने की उनमें शक्ति न थी। ऐसी हालत में उनकी आंखें उन विदेशियों की ओर उठीं जो समुद्र से भारत में घुसने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने शीघ्रता से इन योरूपीय ईसाई विदेशियों के लिये भारत की खिड़कियां खोलदीं और उनको राष्ट्र के दुर्ग हिन्दुस्थान में चुपके से घुसा लिया।

हिन्दुओं ने दया दिखला कर जो थोड़े मुसलमान सूबेदार व नवाब छोड़ दिये थे उन्हीं के यहां पोर्तगीज, फरासीसी, डच तथा अंग्रेजों को प्रारंभ में आश्रय व शक्ति बढ़ाने का मौका मिला। मुसलमानों के साथ अंग्रेजों का युद्ध तो केवल कठ-

पुतलियों का तमाशा मात्र था। अंग्रेजों के २३ आदमी ही प्लासी के युद्ध में मारे गये और बंगाल उड़ीसा की नवाबी अंग्रेजों के हाथ आगई। आर्काट की नवाबी ने भी अंग्रेजों के सामने मत्था टेक दिया। वक्सर के युद्ध में भी थोड़े से प्रतिरोध के बाद ही मुगल शाहजादा तथा नवाब वजीर ने अंग्रेजी प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। निजाम का भारी भरकम शरीर तो पहिले से ही मरहठों के नाम से कांपता था। उसने प्रारम्भ में फ्रांसीसियों को अपने यहां पाला और बाद में अंग्रेजों के चरणों में अपना माल खजाना व समस्त सल्तनत को डाल दिया। हिन्दू यदि इन बचे खुचे मुस्लिम राज्यों को समाप्त कर डालते तो अंग्रेजों को भारत में पैर जमाने को भी स्थान न मिलता और उनको समुद्र में ढकेल दिया जाता। लेकिन हिन्दुओं ने इन नवाबों के साथ थोड़ी दया दिखलाई और यही दया भारत के लिये श्राप बन गई। जहां २ अंग्रेजों की मुसलमानों से टक्कर हुई वहीं पर उनके पैर जम गये। कलकत्ता का छोटा लाल निशान बढ़कर बंगाल, बिहार उड़ीसा में फैल गया। मद्रास की छोटी सी अंग्रेजी वस्ती कर्नाटक व उत्तरी सर्कार आदि को निगल गई। निजाम हैदराबाद के तो कंधे पर अपनी बन्दूक रखकर अंग्रेजों ने भारत पर आक्रमण ही किया। परंतु बम्बई के आस अंग्रेजों का फैलाव अधिक समय तक नहीं हो पाया क्योंकि वहां कोई नवाब व सूबेदार नहीं था जो इन विदेशियों को राष्ट्र दुर्ग में घुसा लेता। उसके आस पास महाराष्ट्र की कालिक कठोर

चट्टानों पर राष्ट्रीयता का प्रतीक हिन्दू संतरी खड़ा हुआ भारत के इस फाटक की रक्षा कर रहा था। उसके हाथों में संगीन थी और उसके हृदय में स्वराज्य और स्वधर्म की आकांक्षा हिलोरें मार रही थी। उसका एक हाथ देव और देश के नाम पर भारत माता के शरीर पर कसी यवन दासता की जंजीरें काट रहा था और दूसरे हाथ की संगीन उन ईसाई विदेशियों के सीने की ओर तनी थी जो चुपके २ भारत में प्रवेश करने के प्रयत्न में थे!

७०० साल तक भयंकर युद्ध में रत हिन्दू राष्ट्र मुसलमानी सत्ता के टुकड़े २ करने के बाद अपने घावों से बहते रक्त को भी न पौंछ पाया था कि उसके सामने एक नया शक्तिशाली शत्रु आगया जिसने बची हुई मुसलमानी शक्ति और साधनों के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। हिन्दुओं की शक्ति का भयंकर ह्रास होचुका था वह शताब्दियों के निरंतर युद्ध के बाद थकित थे उनके घावों से रक्त बह रहा था फिर भी उन्हों ने आत्म समर्पण नहीं किया और न दीनता ही दिखलाई। समस्त दीनता एवं कायरता तो उस समय के नबावों व वजीरों के हिस्से में थी और समस्त त्याग बलिदान व अद्वितीय शौर्य हिन्दुओं के बांट पड़ा था। उन्होंने झपट कर अपनी तलवार उठाली और अपने घावों के रक्त को पीते हुए राष्ट्र स्वातंत्र्य संग्राम पुनः आरम्भ कर दिया। अंग्रेज, जो अभी तक कर्नाटक के नबाबों की कायरता, मीर जाफर की राष्ट्र द्रोहता, तथा निजाम की दीनता देखने के

आदी थे, इस राष्ट्रीयता का अदभुत प्रस्फुरण देख कर आश्चर्य चकित रहगये। प्रथम मरहठा युद्ध में जो अंग्रेजी सेना पूना पर अधिकार के लिये बढ़ी उसे खंडाला व किर्की की भयंकर हानि उठाने के बाद बडगांव पर बिना शर्त हथियार डाल देने पड़े और जब जनरल गोडर्ड ने बड़गांव की पराजय के कलंक को धोना चाहा तो उसको भी अपनी समस्त रसद एवं तोपखाना मरहठों को सौंप कर बम्बई भाग कर जान बचानी पड़ी। दूसरे और तीसरे मरहठा युद्ध हुये और हर बार इंच २ भूमि पर अंग्रेजों को खून के दलदल को पार कर बढ़ना पड़ा और प्रत्येक कदम पर हिन्दुओं ने अपनी हड्डियों के पहाड़ लगाकर अंग्रेजी बढ़ाव को रोका। हेस्टिंग्ज और कार्नवालिस सदृस महान राजनीतिज्ञ और वीर आ आ कर टकराये, निजाम ने भी बार २ अपने बौने हाथ मरहठों के विरोध में उठाये परंतु हर बार उन्हें मार कर पीछे हटा दिया गया। अंग्रेज जहां भी और जब भी हिन्दुओं से टकराये वहां ही प्रारंभ में उनको धूल फांकनी पड़ी। सिक्ख, मरहठों व गोरखों के युद्ध इस बात के साक्षी हैं कि असंगठित बिखरी तथा अलग २ हिन्दू राष्ट्र की चिनगारियों को भी अंग्रेजों ने अपनी सम्पूर्ण तयारी के साथ सतर्कता पूर्वक ही छुआ और फिरभी उनकी अंगुलियां अनेकों बार जल गईं। सिक्खों के साथ युद्ध में अंग्रेजों को चिलियानवाला व रामनगर के युद्ध देखने पड़े जहां अंग्रेजी सेनाओं को बुरी तरह पराजित होना पड़ा। और वह भी तब जबकि सिक्ख सेना के सेनापति

ही अंग्रेजों से मिल गये थे। गोरखा युद्ध तो हिन्दू शौर्य का साकार प्रतीक बन कर इतहास में स्वर्ण अक्षरों से अंकित है। जहां बलूचों की विशाल सेनाएं म्यानी और हैदराबाद के युद्धों में अंग्रेज सेना के सामने तिनकों के समान उड़तीं दिखलाई दीं वहां दुनियां ने हिमालय के गर्भ में बसने वाले मुट्ठी भर गुरखों द्वारा तीन शक्तिशाली अंग्रेजी फौजों को भी पराजित होते देखा। हिन्दू शक्ति का यह बिखरा हुआ प्रदर्शन था, राष्ट्र की शक्ति अनेक टुकड़ों में बटी हुई विदेशियों की बाढ़ को रोक रही थी। यदि यही बिखरी शक्ति एक सूत्र में संगठित होकर अंग्रेजों पर टूट पड़ती तो अंग्रेजी साम्राज्य भारत की छाती पर कभी खड़ा भी न हो पाता। हिन्दू थकित थे, जर्जरित थे फिर भी उन्होंने एक शताब्दी से भी अधिक अंग्रेजों का सामना किया। कभी पूना, कभी नागपुर, कभी इन्दौर, कभी गवालियर, तो कभी लाहौर से राष्ट्रीयता का विस्फोट होता ही रहा और अन्त में गिरते २ सन् १८५७ में उसने पलट कर अंग्रेजों पर भीम वेग से प्रत्याक्रमण किया।

राष्ट्रीयता का यह अंतिम उबाल था। नाना साहब के नाम पर झांसी की रानी ने अपनी [illegible] निकाली और तात्या-टोपे ने सैन्य संगठन करके ऐसी खून की धारा बहा दी जिसमें अंग्रेजी साम्राज्य डूबते २ बचा यदि वह विद्रोह विफल भी हुआ और ग्वालियर की छाती पर स्वातंत्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाई की चिता धधक उठी, यदि मैना को जीवित जला जला

कर अंग्रेजों ने अपनी क्रूरता दिखलाई, यदि हुतात्मा तात्याटोपे फांसी पर झूल गया और यदि नाना के नाम पर उठने वाले हजारों देशभक्तों को तोपों के मुंह से बांध कर उड़ा भी दिया गया तो भी इस विफलता में इतनी तेजस्विता थी कि अंग्रेजों की आंखें चौंधिया गईं। कुछ व्यक्ति १८५७ के विद्रोह की ओर संकेत करके उसे हिन्दू मुस्लिम ऐकता के सिद्धान्त की सफलता सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु वास्तव में १८५७ के विप्लव की विफलता का प्रधान कारण 'मुसलमानों का सहयोग" प्राप्त करने की आकांक्षा ही थी। विप्लव के नेताओं ने केवल इसीलिये कि मुसलमान भी उनके साथ होजावें, बहादुर शाह को बादशाह घोषित कर दिया और यही घोषणा अंत में उनके विनाश का कारण बनी। सफल नेता वह होता है जो प्रत्येक प्रश्न या नीति पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करता है। यदि १८५७ के नेता भी बहादुरशाह को बादशाह घोषित करने की नीति पर केवल यह विचार न करके कि इसका मुसलमानों पर क्या प्रभाव होगा, यह विचार करते कि इसका हिन्दुओं पर कैसा प्रभाव पड़ेगा तो शायद वह यह घातक कदम न उठाते। उन्होंने केवल यह सोचा कि हिन्दू तो नाना के नेतृत्व के कारण सभी साथ हैं हीं मुसलमानों को साथ करने के लिये उन्हें बादशाह का लोभ दे दिया जाय तो अंग्रेजों के विरुद्ध सम्मिलित कदम उठाया जा सकेगा। परंतु उन्होंने यह नहीं सोचा कि मुसलमानों का साथ आना तो दुविधा जनक है परंतु हिन्दुओं के जोश पर इस घोषणा से तुषा-

रापात होजायगा। और हुआ भी ऐसा ही। विद्रोहियों को मुसल-मानों का जो सहयोग मिला वह नगण्य था परन्तु उन्हें सैंथ २ हिन्दुओं के सहयोग से बहुत अंशों में हाथ धोना पड़ा। सिक्खों ने धड़कते हुये हृदय से इस घोषणा को सुना। उनके सामने गुरू तेग बहादुर का पवित्र बलिदान झूम उठा और उनकी आंखों ने सरहिन्द के किले की दीवारों में गुरू के छोटे २ बच्चों को चुने जाने का करुण चित्र भी देखा। बन्दा का गरम चीमटों से मांस नोचा जाना भी उनकी कल्पना में खिंच गया। भला वह उसी मुगल साम्राज्य को कैसे कायम होने देते जिसको उन्होंने इतनी कठिनता के बाद तोड़ पाया था। यही हालत गोरखों, मरहठों व दूसरी हिन्दू जनता की हुई। मुगल अत्याचार अभी तक हिन्दुओं की स्मृति में ताजे थे और उन अत्याचारों की तुलना में अंग्रेजों के अत्याचार नहीं के बराबर थे। औरंगजेब द्वारा तुड़वाये गये मन्दिर हर स्थान पर इस्लामी कट्टरता के प्रत्यक्ष साक्षी थे। नाना साहब के नाम पर हिन्दू साम्राज्य को स्थापित करने के स्वप्न को पूरा करने के लिये हिन्दू बड़ा से बड़ा बड़ा त्याग करने को तैयार थे। हिन्दू राज्य की प्रबल आकांक्षा लेकर हिन्दुओं ने मुगल सल्तनत को छिन्न भिन्न किया हो था और इसी आकांक्षा को लेकर वह अंग्रेजी सत्ता को भी उखाड़ने को तैयार हुये थे। नेताओं ने चाहे जो भी सोचा था परंतु हिंदू अपना खून इसलिये बहाने को बिल्कुल तैयार न थे कि वह अंग्रेजों को हटा कर औरंगजेब के वंशज को दिल्ली की गद्दी पर बैठावें।

मुस्लिम साम्राज्य की कल्पना ने उनके जोश को ठंडा कर दिया और उनकी उठीं हुई तलवारें झुक गईं। नाना के नाम पर प्रारम्भ में विद्रोह का क्षेत्र विस्तृत था परंतु बहादुरशाह को सम्राट बनाने की घोषणा से वह सिमिट कर अत्यन्त संकुचित होगया। जबलपुर व कोल्हापुर में कुछ उथल पुथल अवश्य हुई परन्तु वह तो नहीं के तुल्य ही थी। इधर तो बहादुरशाह के नाम की हिन्दुओं पर यह प्रतिक्रिया हुई उधर मुसलमानों का सहयोग भी न मिला। पंजाब, सीमान्त, सिन्ध यहां तक कि निजाम और भोपाल आदि मुस्लिम क्षेत्र पूर्ण उदासीन बने रहे। मुसलमानों पूर्ण पतन होचुका था। उनमें यदि राज्य स्थापित करने की योग्यता होती तो उनका साम्राज्य टूटता ही क्यों। उनमें वीरता देशभक्ति तथा स्वातंत्र्यप्रेम के स्थान पर दगाबाजी विश्वासघात और ऐयाशी जड़ जमा चुकी थी। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये जहां भाई भाई का खून कर सकता हो माता पुत्रों को मार सकती हो और पुत्र पिता को कैदी बना सकता हो वह जातियां स्वाधीनता संग्राम नहीं लड़ा करतीं। हिन्दू सहयोग के ढीला पड़ते ही विद्रोह का चलना असंभव होगया। मुसलमानों में विश्वास घात का बाजार गर्म हुआ और चन्द चांदी के टुकड़ों पर बादशाह के नजदीकी रिस्तेदार मुसलमान सर्दारों ने अपने शाह और शहजादों को अंग्रेजों द्वारा पकड़वा दिया। नाना साहब के नाम पर स्वतंत्रता यज्ञ की चिंगारी उत्पन्न हुई थी किन्तु बहादुरशाह के नाम ने उस चिंगारी पर राख डालदी और वह थोड़ा चमकने के

बाद बुझ गई। इतिहास ने अपने को फिर से दोहराया था और अबकी बार राष्ट्र ज्वालामुखी इधर उधर नहीं बल्कि अंग्रेजी सत्ता को साधने वाले खम्भों को ही फोड़कर फट पड़ा था और यह अंगरेजों की अपनी छावनियां थीं जो अचानक गर्म होकर धधक उठीं थीं। ऐसी स्थिति में अंगरेजों के बच निकलने का कोई मार्ग अवशेष न था और वह भी अपने पूर्व आक्रमणकारियों की भांति राष्ट्रीयता के भंवर में डूब जाते। परंतु पहिले राष्ट्रीयता के साथ अराष्ट्रीयता का कृत्रिम सम्मिश्रण नहीं किया गया था शकों से युद्ध करते समय न तो हिन्दुओं ने ग्रीकों का सहारा लिया था और न हूणों को कुचलने के लिये शकों की सहायता की ही अपेक्षा की थी। शिवा जी का उदाहरण तो बिल्कुल नया ही था जबकि विशुद्ध हिन्दुत्व की ठोकर खाकर मुगल साम्राज्य धरासाही होगया था। यदि १८५७ के नेता "राम खुदैया" या "राम रहीम" के चक्कर में न पड़ते और राष्ट्रीयता के प्राकृतिक प्रवाह को न छेड़कर उसे अपने प्राकृतिक रूप से ही बहने देते तो हिंदुओं का यह प्रत्याक्रमण कभी व्यर्थ न जाता।

अंग्रेज भारत में आखें बन्द कर नहीं घुसे थे। उन्होंने भारत में होने वाली प्रत्येक प्राचीन व तात्कालिक घटना को सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया। उन्होंने प्रत्येक उथल पुथल का पता लगाया और प्रत्येक युद्ध की जीत और हारका विश्लेषण किया। सिकन्दर महान का भारत पर आक्रमण और हिन्दुओं द्वारा उसकी अजेय शक्ति की छीछालेथन यदि अतीत की बात थी

फिर भी अपने युग का सबसे शानदार व शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का विनाश तो उनकी आंखों के आगे ही हुआ था। उन्होंने मुसलमानों की भांति हिन्दू ग्रन्थों को जला कर हमाम गरम नहीं किये वलिक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर उन ग्रन्थों का मनन किया और राम-रावण, सुर-असुर, देव-दानव के युद्धों में हिंदुत्व की ज्योति को ही जलते पाया। उन्होंने इस तथ्य को समझा कि भारत का राष्ट्र हिन्दू ही है और हिन्दुत्व के आधार पर संगठित राष्ट्रीयता के रहते भारत को अधिक समय तक पराधीन बनाकर रखनां असंभव है। हिंदुत्व का विनाश करना उनकी शक्ति के बाहर की वात थी क्यों ऐसा प्रयत्न तो सभी आक्रमणकारी कर चुके थे। राक्षसों के अत्याचार, हुणों की पैशाचिकता व मुसलमानों की क्रूरता सभी को बारी २ से अजमाया गया और सभी हिन्दुत्व की ज्योति बुझाने में सर्वथा असफल हुये। औरंगजेब ने खून की धारा वहाकर हिन्दुत्व को डुबाना चाहा परंतु हिन्दू राष्ट्र तो उसमें स्नान कर और भी तेजस्वी होकर निकल आया परंतु उसमें मुगल वंश व मुगल साम्राज्य सदैव के लिये डूबगया।

हिन्दू प्रतिरोध का अंग्रेजों को स्वयं भी अनुभव था। जहां किसी भी मुसलमान नवाव व सूवेदार ने अंग्रेजी शक्ति को एक बार से अधिक चुनौती नही दी, जिसके शिर पर अंग्रेजों ने हल्की थाप दे दी वही हमेशा के लिये शिर दवाकर बैठ गया, वहाँ हिन्दुओं के साथ एक २ टक्कर अंगरेजों के जी का जंजाल ही सावित हुई। सबसे वड़ी समस्या तो हिंदुओं की पुनर्जीवन

शक्ति थी। बार २ अंग्रेज हिन्दू ज्वाल को दबाते और बार २ वह नई शक्ति के साथ किसी न किसी स्थान से पृथ्वी को फोड़ कर अचानक फूट पड़ता। राख के ढेर को दहकते हुये अंगारों में देखते २ बदल जाने का विलक्षण अनुभव उन्हें हिन्दुओं के सम्बन्ध में ही हुआ था और वह स्वयं नहीं समझ पा रहे थे कि भारत के हिन्दू और मुसलमानों में ऐसा भेद क्यों है कि एक में जीवन शक्ति व प्रतिरोधात्मक क्षमता का अनंत श्रोत भरा पड़ा है तो दूसरे में इन दोनों बातो का सर्वथा अभाव है। अन्त में वह इस निश्कर्ष पर पहुँचे कि जिन पौधों की जड़ें नहीं होती या जिनको किसी अन्य स्थान से लाकर कृत्रिम रूप से लगाया जाता है उनको नष्ट करने के लिये विशेप परिश्रम की आवश्यकता नही होती। वह या तो स्वयं सूख जाते हैं या उन्हें एक बार उखाड़ देने पर फिर उनमें अंकुर नहीं जमते। परंतु वह पेड़ जो उसी भूमि की प्राकृतिक उपज हैं तथा जिनकी जड़ें पाताल फोड़ कर नीचे निकल जाती हैं अथवा जहां धूल का एक २ कण उनको अपने हृदय में छिपा कर रक्खे हो उनको नष्ट करना मानव शक्ति के बाहर की बात है। घूरे पर पैदा होने वाले कुकुर मुत्ते एक ग्रीष्म की भी लू लपट व हवा का एक झोका झेलते किसी ने नहीं देखे परंतु वट वृक्ष जो पृथ्वी के कण २ को अपनी जड़ों में बांधता हुआ बढ़ता है तथा जो पाताल गंगा से अपना जीवन रस खींचता है उसके ऊपर से सैकड़ों ग्रीष्म अपने असंख्य झुलसाने वाले अंधड़ों को लिये निकल जाते हैं। भारत

में मुसलमान ऐसे पौधे के तुल्य है जो जड़ विहीन है। भारतीय संस्कृति से अलग रहने के कारण उनका केवल ऊपरी रूप है और जड़ों के अभाव के कारण उसमें न बार फैलने की शक्ति है और न पुनर्जीवन की क्षमता। परंतु हिन्दू तो भारतीय संस्कृति का साकार रूप है जिसकी जड़ें अतीत में लाखों वर्षों तक चली गई है अतः वह प्रतिरोधात्मक व पुनर्जीवन दोनों ही शक्तियों से संपन्न हैं। यदि हिन्दू को नष्ट करने का कोई उपाय है तो वह यही कि उसे अपनी प्राचीन संस्कृति से अलग कर दिया जावे। संस्कृति से विच्छिन्न होने पर हिन्दू का जीवन श्रोत कट जायगा और फिर वह जड़ कटे पेड़ की भांति अपने आप ही नष्ट होजायगा।

विद्रोह की विफलता से यह भी स्पष्ट होगया कि हिन्दू के साथ मुसलमान के सम्मिश्रण से हिन्दू की शक्ति का अत्याधिक क्षय होजाता है क्योंकि ऐसी स्थिति में हिंदू अपनी संस्कृति के अक्षय भंडार से विल्कुल कट जाता है। दूध के साथ पानी मिला देने पर जिस तरह अत्याधिक गर्म करने पर भी दूध में उवाल नहीं आसकता वैसे ही हिन्दू राष्ट्रीयता के साथ मुस्लिम अराष्ट्रीयता का मिश्रण होने से राष्ट्र शक्ति निशक्त एवं निस्तेज होजाती है और फिर उसके अन्दर प्रतिरोधात्मक व प्रत्याक्रमण दोनों भांति की शक्ति नहीं रहती अतः अंग्रेजों ने जो १८५७ के पहिले हिन्दू मुसलमानों को एक न होने देनेकी नीति पर चलते थे अचानक "हिंदू मुस्लिम एकता" पर आश्रित प्रादेशिक राष्ट्रवाद

की नीति को जन्म दिया और एक अंग्रेज कर्मचारी ए० ओ० ह्यूम ने इङ्गलैण्ड के ऊँचे २ राजनीतिज्ञों के साथ परामर्श करके हिंदुओं को अपनी संस्कृति से विच्छिन्न करने के लिये कांग्रेस नामक संस्था की स्थापना की।

हालांकि बाद में भारतीय देश भक्तों ने कांग्रेस को स्वतंत्रता संग्राम लड़ने वाली संस्था में अवश्य बदल दिया और इसके अंचल में प्रथम श्रेणी के राजनीतिज्ञ व देशभक्त भी चमकते दिखलाई पड़े परंतु यह निश्चित है कि कांग्रेस की स्थापना में अंग्रेजों का उद्देश्य शुद्ध नही था और न इसके संस्थापक भारत की स्वतन्त्रता की भावना से ही ओत प्रोत थे। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि स्वतन्त्रता संग्राम लड़ने वाली संस्थायें विदेशियों द्वारा स्थापित नहीं की जातीं और न किसी शासक से यह आशा की जासकती है कि वह अपने विनाश का मार्ग अपने पैर के नीचे दबे शासित देश को बता देगा। अकबर ने राणाप्रताप के स्वतंत्रता संग्राम को न तो स्थापित ही किया था और न उनको उत्साहित करने के लिये अपना आशीर्वाद दिया था। छत्रपति शिवाजी के भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की रूप रेखा औरंगजेब के किसी सिपहसालार ने दिल्ली दरबार के परामर्श से तैयार नहीं की थी। आयरलेन्ड ने भी सैकड़ों वर्षों तक अंग्रेजों के चंगुल से निकलने का बार २ प्रयत्न किया परंतु जहां अंग्रेजों के नग्न क्रूरता व पाशविकता के अनेकों उदाहरण हैं वहां एक भी ऐसा उदाहरण नहीं जबकि कोई धर्मात्मा अंग्रेज ने

वहां पहुँच कर शहीदों की टोलियों का नैतृत्व किया हो। अभी कल ही की तो बातें है कि कोई दूसरे नहीं बल्कि अपने ही भाई, जो अंग्रेजों के ही हाड़ और मांस के अंश थे, जब उन्होंने स्वतंत्र होने की चेष्टा की तो अंग्रेजों ने कितना खूनी युद्ध लड़ा था अमेरिका का स्वतंत्रता युद्ध इसका प्रमाण है। और यह अंग्रेज वही हैं जो आस्ट्रेलिया न्यूजीलेण्ड के विशाल भूखंडों से उनके मूल निवासियों का सामूहिक नाश करके अपनी अहिंसा का भी काफी परिचय दे चुके हैं। प्राचीन काल में शासकों द्वारा मानसिंह मीर जाफ़र तथा आधुनिक युग में विजेताओं द्वारा व क्विसलिंग निर्माण के तो अनेकों उदाहरण मिलते हैं परंतु एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहां शाशकों ने विक्रमादित्य, गैरिवाल्डी व जनरल डीगाल के स्वतंत्र आन्दोलनों की स्थापना की हो। साम्राज्यवाद का ढांचा दूसरी जातियों की स्वतन्त्रा पर निर्भर न होकर उनके कठोर तम बन्धनों पर ही सधा होता है और साम्राज्यवादी जातियां राष्ट्रीयता को पोषण करने वाली धर्म का अवतार न होकर राष्ट्रीयता को कुचलने में सिद्ध हस्त नग्न क्रूरता की प्रतिमूर्ति ही होती हैं। यह सोचने की बात है कि यदि कोई शासक अपने आधीनस्थ देश को स्वतंत्र करना चाहे तो इसके लिये इतना ही पर्याप्त है कि वह उस देश को छोड़कर चल दे; उसे राष्ट्रीयता की परिभाषा वताने या स्वतंत्रता के लिये लड़ने वाली संस्थाओं की स्थापना करने की क्या आवश्यकता। यदि वह ऐसा ढोंग करे तो यह समझना चाहिये कि इसमें कोई भीतरी

चाल अवश्य है। यदि कोई डाकू खून खराबी व, हत्या करके किसी के मकान पर बल पूर्वक अधिकार करले और गृहस्वामी को सुदृढ़ बन्धनों में बांध दे यदि वह किसी समय सद्भावना से प्रेरित होकर मकान छोड़कर अपने आप चल दे तो यह ढंग ठीक है। परन्तु यदि वह ऐसा न करके शोर मचाना आरम्भ कर दे कि वह मकान छोड़ना चाहता है परन्तु ऐसा तभी होसकता है जब गृह स्वामी शिर के बल चलने का अभ्यास करके उसे धक्का दे क्योंकि यही उसको भगाने का एक मात्र रास्ता है, ऐसी घोषणा उसकी मक्कारी व दुर्भावना की द्योतक होगी और यह गृहस्वामी की मूर्खता होगी यदि वह पैरों पर खड़ा होना छोड़ शिर के बल चलने का अभ्यास करने लगे और अपनी इसी मूर्खता को स्वतंत्रता संग्राम बतावे।

१८५७ के थोड़े दिन बाद ही वासुदेव बलवंत फाड़के द्वारा दक्षिण में व रामसिंह कोका द्वारा उत्तर में अंग्रेजी साम्राज्य को उलटने के प्रयत्न से अंग्रेज तिलमिला गये थे और ठीक इन विद्रोहों के ही बाद १८८४ में कांग्रेस की स्थापना में उनकी ऐसी ही मक्कारी व दुर्भावना छिपी थी। अंग्रेज हिन्दुस्थान को स्वतन्त्र नहीं करना चाहते थे बल्कि वह हिंदुस्थान की आधारभूत जड़ हिन्दू संस्कृति से हिन्दू को पथ भ्रष्ट कर उसे निशक्त करके उसका राजनीतिसे सर्वथा लोप कर देना चाहते थें। यदि वह ऐसा प्रत्यक्ष रूप से करते तो उन्हें भी तत्क्षण किसी चाणक्य अथवा शिवाजी का सामना करना पड़ता और मुगल व ग्रीक शक्ति की भांति अंग्रेज

भी हिन्दू प्रतिहिंसा में जल भुन कर नष्ट होजाते। इसलिये स्वयं सामने न आकर अंग्रेजों ने उन व्यक्तियों को सामने कर दिया जो लार्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारत में निर्माण किये गये थे और जो केवल रंग में भेद रखते हुये मस्तिष्क, विचारधारा व वेशभूषा सभी बातों में अंग्रेज ही थे। ऐसे काले अंग्रेजों को सिखंडी की भांति सामने करके और अपने को उनकी ओट में छिपा कर अंग्रेजों ने राष्ट्र की हत्या का प्रयत्न आरम्भ में किया। प्रारम्भ में ऐसे ही व्यक्तियों को लेकर कांग्रेस की नींव भी डाली गई और इसके द्वारा हिन्दुओं को एक ऐसी विचित्र राष्ट्रीयता के निर्माण में लगा दिया गया जिसमें राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता की मिलावट व परस्पर विरोधी तत्वों को हिलगा कर एक खिचड़ी राष्ट्र गठन पर जोर दिया गया था। दुनियां के किसी देश में "कहीं की ईंट व कहीं का रोड़ा" मिलाकर राष्ट्रों का निर्माण नहीं हुआ। स्वयं इङ्गलेण्ड में विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं परंतु वहां भी जर्मन, फरासीसी जापानी व इंगलिश को मिलाकर अंग्रेज राष्ट्र नहीं बनाया गया। भारत के मुसलमानों को भी अंग्रेजों ने इस माया जाल से दूर रक्खा क्योंकि जहां हिन्दू की प्रतिनिधि उसने खिचड़ी राष्ट्र पर विश्वास करने वाली कांग्रेस को माना वहां उसने मुसलमानों की साम्प्रदायकता को आगे बढ़ाने के लिये अलग से मुस्लिम लीग की भी स्थापना की। हिन्दुओं से तो कहा गया कि वह मुसलमानों को मिलावे और उसके लिये अपनी संस्कृति में

काट छांट करें और कांग्रेस सब कुछ छोड़कर इसी कार्य में जुट गई। उधर मुसलमानों को हिन्दुओं से सदैव अलग रहने का आदेश दिया गया और उनके कार्य को उनके ही द्वारा स्थापित मुस्लिम लीग ने पूरा किया। अंगरेज के इशारे पर ही कांगरेस के नेतृत्व में हिंदू मुसलमानों को मनाने को दौड़े और अंगरेज के ही इशारे पर मुसलमान हिन्दुओं से अलग भागे। कांगरेस ने मुसलमानों से राष्ट्रीय बनने की प्रार्थना की और मुसलमान ने अपने ऊपर राष्ट्रीयता का दिखावटी रंग तक चढ़ाने की कीमत मांगी। हिन्दुओं की नेता वह कांगरेस बनी जिसको न हिन्दू संस्कृति से किंचित भी लगाव था और न हिन्दू अधिकारों से ममता अतः उसने झोली खोल दी और मुसलमानों की प्रतिनिधि वह मुस्लिम लीग बनी जो आदि मध्य अन्त सभी तरह से साम्प्रदायक थी और उसने सुरसा राक्षसी की भांति अपना मुंह बढ़ाना आरंभ किया और जो मिलता गया उसे पचा कर आगे मांग की।

यह विचित्र स्वतंत्रता संग्राम था जो ऊपरी रूप से अंगरेजों के विरुद्ध था परंतु जिसको भीतरी रूप से अंगरेज ही संचालन करते थे, जिसके द्वारा हरवार स्वतंत्रता के लिये लड़ने वाला राष्ट्रीय तत्व हिन्दू कमजोर तथा स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा डालने वाला अराष्ट्रीय तत्व मुसलमान निरंतर शक्तिशाली होने लगा। हर बार आन्दोलन छेड़े गये और हर बार संघर्ष का समस्त भार हिन्दू के शिर पर ही पड़ा। हिन्दुओं ने ही

गोलियां खाईं, लाठियां खाईं, जेलों में भी वही गये और मुसलमान न केवल अलग रहे वल्कि अंगरेजों की ढाल बनकर सदैव सामने आये, परंतु जब २ समझौता हुआ हुआ तो लाभ मुस्लिम लीग ने उठाया। कांगरेस हिन्दू मुस्लिम ऐकता के पीछे थी और मुस्लिम लीग फूट की नींव पर खड़ी थी पर आश्चर्य यह था कि ऐकता के देव दूत अपने हाथों से फूट के दानव को मोटा वना रहे थे क्योंकि अंगरेजों ने यही एक स्वराज्य का मार्ग उन्हें बताया था जिस पर वह आंख वन्द करके फिसल रहे थे। मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन में हिन्दुओं ने अपना धन जन होमा, अल्लाहो अकवर के नारे लगाये, अपनी भारतीय संस्कृति व सभ्यता में काट छांट करके मुसलमानों की विदेशी संस्कृति के सरक्षण की प्रतिज्ञा की, ऐसेम्वली में कुरान के पाठ किये, मुहम्मद दिवस मनाए व पलस्तीन के लिये प्रस्ताव पास किये इतना ही नहीं प्रथक निर्वाचन माना, साम्प्रदायक निर्णय जिसने हिंदुओं की रीढ़ की हड्डी तोड़ दी उसे भी हिन्दू ने शिर झुका कर माना, गोलमेज कान्फ्रेंस में मुसलमानों को कोरा कागज पेश किये गया, उन्हें भारत का प्रधान मंत्री तक बनाने को कहा गया पर हिंदू मुस्लिम ऐकता न होकर दोनों के बीच फूट ही बढ़ती गई। मुसलमान को राष्ट्रीय बनाने में असफल होकर कांग्रेस ने हिन्दुओं को भी स्वयं अपनी राष्ट्रीयता में कतर बोंत करके अराष्ट्रीय बनाने का प्रयत्न किया। कौआ यदि हंस नहीं बनता तो हंस ही अपने को काला रंग कर कौवे के पास क्यों न जावे" इस

युक्ति पर चल कर वन्देमातरम् को काट छांट डाला गया, मुसल मानों के गौवध के अधिकार को मान लिया, हिन्दी में उर्दू का सम्मिश्रण करके हिन्दुस्तानी भाषा बनी, हिन्दू नारियों के अप-हरण पर मौन रहा गया परंतु मुसलमान फिर भी अलग रहा। कांन्फ्रेन्से हुई, संयुक्त वक्तव्य निकले, समझौते किये गये फिर भी हिन्दू मुस्लिम ऐकता का सुनहला लक्ष्य बराबर दूर ही बना रहा और रहता भी क्यों नहीं ! अंगरेजों ने जिसको ऐकता का मार्ग कहा था वह तो फूट का अत्यन्त घातक मार्ग था यदि इस सिद्धान्त को इतहास की कसौटी पर कसा जाता तो इस मायाजाल का भण्डाफोड़ होजाता और पता चलता कि हिंन्दू मुस्लिम ऐकता करके एक राष्ट्र वनाना सुनने में उतना ही सरल तथा करने में उतना ही दुस्तर है जैसे १०० मन रेत में से केवल छटांक भर तेल निकालना या १०० गज दल दल को तैर कर पार करना। यदि कोई विना यह सोचे कि रेत में से तेल नहीं निकलता या दल दल को तैर कर पार नही किया जाता ऐसा करने में आंख व कान वन्द करके लग जावे तो जो फल उसके प्रयत्न का होगा वही फल कांग्रेस द्वारा किये गये हिन्दू मुसलमान ऐकता के प्रयत्नों का भी हुआ।

हिन्दू जिस मुगल साम्राज्य को भारत भूमि में, बहुत गहरा दबा चुके थे अंग्रेज उसे ही पुनः खोद कर निकालना चाहते थे जिससे अंग्रेज-मुसलमान गठवन्धन हिन्दू राष्ट्रीयता पर नियंत्रण रखने में समर्थ हो परन्तु ऐसा वह स्वयं न करके हिन्दुओं द्वारा

ही करा रहे थे। और हिन्दू ! जिसका स्वभाव ही भगवान शंकर के रूप में हलाहल पान करना तथा भस्मासुरों को वरदान देकर अपने ही विनाश के लिये बलशाली बनाना रहा है वह फिरंगी के जाल में फंसा हुआ वही मार्ग अपना रहा था। वह नहीं जानता था कि फिरंगी के इंगित पर जिस स्वराज्य के मार्ग पर आंख बन्द कर बढ़ रहा है उधर स्वतंत्रता नहीं बल्कि पाकिस्तान का राक्षस मुंह बाये खड़ा है। प्रत्येक क्षण हिन्दू इसी पाकिस्तान के समीप पहुँचने लगा। हिन्दू को इस आत्मघाती नीति से सावधान किया गया, उसके सामने शिवाजी का पुनीत आदर्ष रखकर उसे सच्चे मार्ग पर लाने के बार २ प्रयत्न किये गये, परंतु हिन्दू, जिसने जन्मेजय बन कर नागयज्ञ करने के साथ साथ तक्षक को जीवन दान तथा सम्राट् पृथ्वीराज के रूप में राष्ट्र शत्रु मुहम्मदगोरी को १७ बार अपने हाथ में पाकर भी क्षमा दान किया था पुनः मदान्ध होकर पुरानी गलती दोहराने पर तुला था। अबकी बार एक तक्षक व एक मुहम्मदगोरी का प्रश्न नहीं था बल्कि ऐसे दैत्य को खोद कर निकाला जारहा था जिसमें तक्षक का जहर व गोरी से लेकर अब्दाली तक के विदेशी आक्रमणकारियों की समस्त क्रूरता कूट २ कर भरी थी।

प्रतिक्षण पाकिस्तान के ऊपरी चिन्ह स्पष्ट होते जा रहे थे। मुसलमानों को विशेषाधिकार। साम्प्रदायक निर्णय, आत्म निर्णय का सिद्धान्त तथा मौलाना आज़ाद द्वारा किया गया स्पष्टीकरण, पाकिस्तानी ईमारत के ही कंगूरे थे। प्रथक् चुनाव की सबसे

नीची श्रेणी से चल कर विभिन्न समझौतों पर पैर रखते हुये मुसलमान अपने से चौगुनी संख्या वाले हिन्दुओं के साथ "राजनैतिक समानता" पर पहुँच गये और कुछ ही समय बाद उससे भी आगे बढ़कर पृथक राष्ट्र के सिद्धान्त पर आधारित भारत के विभाजन को भी कांग्रेस द्वारा उन्होंने मनवा लिया। देश भर में "चंगेज तैमूर व हलकूखां" के झुंड के झुन्ड स्थान २ पर नरमेध व रक्तपात कर अपनी विजय के स्वागत का आयोजन कर रहे थे। नोआखाली सीमान्त व पंजाब में जो बर्बरता प्रदर्शित की गई उससे तो कब्र में दबी औरंगजेबी आत्मा भी कांप उठी होगी। देश भर में हलचल मच गई, स्त्रियों और बच्चों की चीत्कारों से आकाश फटने लगा, हिन्दुओं की धन सम्पत्ति की होली स्थान २ पर धधक उठी और उसी में धधकने लगी थी भारत की अखंडता। अंग्रेज मुस्लिम षणयन्त्र सफल हुआ जो असंभव था वही संभव बन गया और जो शेखचिल्ली का स्वप्न कहा जाता था वही कठोर सत्य बन कर सामने आगया। इसलिये नही कि हिन्दू पराजित और मुसलमान विजयी हुये थे इसलिये भी नहीं कि मुस्लिम लीग की रक्तपात की धमकी से हिन्दू डर गये थे बल्कि केवल इसलिये कि हिन्दू के नेताओं ने उन्हें धोखा दिया। जिन्होंने "भारत माता के टुकड़े कभी न होने देंगे" ऐसी घोषणा दो एक बार नहीं बल्कि अनेकों बार की थी और "जिन्होंने चुनाव भी इसी घोषणा पर जीता था" उन्होंने अपनी गद्दियों के लिये भीगी बिल्ली बन कर राष्ट्र-प्रतिमा को

अपने ही हाथों से खंड २ कर डाला। १५ अगस्त सन १९४७ को एक अंगडाई लेकर झूठी राष्ट्रीयता का कफन फाड़ कर पाकिस्तान अपने जबड़ों को पीसता हुआ बाहर निकला और उसके साथ ही फूट पड़ा समूचे भारत में मृत्यु, विध्वंस, और पैशाचिकता का रुका हुआ बांध।

पाकिस्तान, मुस्लिम महत्वाकांक्षा का अन्तिम लक्ष्य नहीं बल्कि उसी तरह एक सीढ़ी मात्र है जिस तरह मुस्लिम लीग के साथ किये गये अनेकों समझौते थे और मुसलमान इसका उपयोग भी उन्हीं समझौतों की भांति ही करना चाहते हैं। मुस्लिम लीग ने जितने समझौते किये प्रारम्भ में सभी को उसने अन्तिम कहा और उनका लाभ उठा लेने के बाद उसने उन्हें बार २ तोड़कर अपनी नई मांगें रक्खीं। अतः यह सोचना कि पाकिस्तान की स्थापना के बाद मुस्लिम साम्प्रदायकता संतुष्ट होजावेगी और शान्ति और सद्भावना के युग का सूत्रपात होगा केवल अज्ञानता का द्योतक है। सबसे पहिले "सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा" के रचियता मुहम्मद इकवाल के "राष्ट्रीय" मस्तिष्क में राष्ट्रद्रोहता का पाकिस्तानी अंकुर उत्पन्न हुआ था और उन्होंने ही मुस्लिमलीग के प्रधान पद से १९३० में उत्तरी पच्छिमी प्रान्तों को मिला कर एक अलग मंडल बना देने की मांग की थी। सन १९३३ में केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के एक विद्यार्थी चौधरी रहमत अली ने "हम हिन्दुस्तानी नहीं" कहते हुये पाकिस्तान की रूप रेखा को लेखबद्ध सामने रक्खा और पंजाब, अफगान प्रान्त, काश्मीर

और सिन्ध के पहिले तथा बलूचिस्तान के "अन्तिम" अक्षरों को लेकर "पाकिस्तान" शब्द का निर्माण किया। १६३५ में उन्होंने बंगाल और आसाम को भी इसमें सम्मिलित कर लिया और उसका नाम "बंगे इस्लाम" रक्खा। १६४२ में इस योजना में और भी संशोधन किया गया और "निजाम हैदराबाद" को इसमें लपेट कर उसको "उसमानिस्तान" संज्ञा दी गई। इस दक्षिणी पाकिस्तान को समुद्र तक पहुँचाने के लिये उसमें मलाबार का मोपला प्रदेश भी सम्मिलित करके उसे "मोपलिस्तान" नाम दिया गया। अजमेर में शेख सलीम का दरगाह है अतः इस "छोटेकावे" के बिना पाकिस्तान अधूरा होगा इसलिये उसे "मुईउस्तान" कहा गया। पूर्वी व पच्छिमी पाकिस्तान को मिलाने के लिये लखनऊ होता हुआ रास्ता भी चाहिये जिसको "हैदरिस्तान" नाम देकर उसे भी पाकिस्तान का अंग मान लिया गया। मुस्लिम मनोवृत्ति को इतने पर भी चैन नहीं मिला और शेखचिल्ली के स्वप्न की भांति उसने आगे बढ़कर समूचे भारत और पूरी एशिया को जीत कर उसे क्रमशः "दीनिया" और पाकेशिया बना डाला। इस तरह यह स्पष्ट है कि मुस्लिम साम्प्रदायकता पाकिस्तान से आगे बढ़कर "दीनियां" व पाकेशिया तक पहुँचाना चाहती है। उसने प्रारम्भ से जो नीति अपनाई है उससे भी इस आशंका की पुष्टि होती है। पच्छिमी पाकिस्तान में हिन्दुओं का पूर्णतया सफाया और बाद में इसी ढंग को पूर्वी पाकिस्तान में लागू करना, पाकिस्तान की फौजी योजना का अंग है और भविश्य में भारत के

साथ फौजी टक्कर की भूमिका मात्र है। काश्मीर पर आक्रमण जहां अधूरे पाकिस्तान को पूरा करने के उद्देश्य से था वहां हैदरावाद में रजाकार आन्दोलन के पीछे भी यही "उसमानिस्तानी" योजना काम कर रही थी। आसाम में लाखों मुसलमानों का अनाधिकृत प्रवेश, भारत भर में उसके जासूसों का जाल, और स्वयं पाकिस्तान में भारत के विरुद्ध धुआंधार प्रचार व जिहाद की तैयारियां इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि पाकिस्तानी नेता चाहे जो कहें और उनसे चाहे जितने भी समझौते किये जावें परन्तु उनकी नीयत भारत के प्रति अच्छी नहीं और पाकिस्तान को आधार बना कर मुस्लिम साम्प्रदायिकता भारत को 'दीनिया' बनाने के लिये प्रयत्न शील है। उसके द्वारा विश्व मुस्लिम लीग की स्थापना तथा कराची में विश्व मुस्लिम कान्फ्रेंन्स का आयोजन इस बात को भी साबित कर रहा है कि पाकिस्तान भारत के विरुद्ध दूसरे मुस्लिम राष्ट्रों की शक्ति का भी उपयोग करना चाहता है और फिर इसी शक्ति को "पाकेशिया" के स्वप्न को पूरा करने में भी काम में लायगा।

५

हिन्दू का स्वतन्त्रता संग्राम अनादि और अनन्त है उसमें ज्वालामुखी की भांति ही अपने आप स्वाभाविक विस्फोट होता रहता है। जिस तरह ज्वालामुखी की अग्नि कभी अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ फूट कर अपने आस पास प्रलय एवं विध्वंश की वर्षा करती है और कभी ऊपरी रूप से शांत होकर अपने को पृथ्वी के गर्भ में समेट कर केवल चिनगारियों के रूप मेंही कभी २ सतह के ऊपर दिखलाई देती है उसी भांति हिन्दुओं की राष्ट्रीयता कभी उबल उठती है और कभी वह आतंकवाद की विखरी चिनगारियों के रूप में बदल जाती है। पर दोनों का श्रोत एकही होता है। जैसे ज्वालामुखी से उठती हुई चिनगारियां पृथ्वी के गर्भ में भरी अनन्त अग्निराशि की द्योतक होतीं हैं जो किसी भी क्षण भड़क सकती है ऐसे ही आतंकवाद भी राष्ट्र की चेतना शक्ति व भीतरी असंतोष का द्योतक होता है।

१८५७ के क्रान्तिकारी विस्फोट के शान्त होने पर हिन्दू राष्ट्र के स्वतंत्रता संग्राम ने आतंकवाद का रूप ले लिया। क्रान्ति के

ऊपरी चिन्हों को अंग्रेजों ने अवश्य मिटा दिया परंतु राष्ट्र के भीतर सुलगने वाली राष्ट्रीय चेतना को वह छूने में भी असफल रहे और इसी गुप्त असंतोष की लहर को बलवती न होने देने के लिये तथा उसके सतह पर आकर भयंकर रूप से भड़क उठने के पहिले ही उसका निस्सरण करने के लिये उन्होंने "कांग्रेस" की स्थापना की। उनके इस मायाजाल में फंसकर राष्ट्र की शक्ति बहुत कुछ भ्रमित भी होगई फिर भी राष्ट्र स्वाधीनता की लहर अपने प्राकृतिक पूर्व रूप में देश के अन्दर बहती ही रही। कांग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दो रूप होगये। एक रूप था अंग्रेजों या उनके ही ऐसे पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से अन्धे, भारतीयता से विहीन, भारतीयों द्वारा संस्थापित कांग्रेस का जिसका भारत के अतीत से कुछ भी सम्बन्ध न था और जिसमें आराम के साथ कुर्सियों को तोड़ते हुये अंग्रेजों के सामने प्रस्तावों के रूप में एक बार २ या अनेक बार गिड़गिड़ा कर स्वतंत्रता संग्राम लड़ने का ढोंग किया जाता और दूसरा रूप था वह जो बिना संगठन, तथा बिना नेतृत्व के भारत के अन्दर प्राकृतिक रूप से चालू था। यह धारा थी जिसका श्रोत भारत के अतीत में था और जो भारत के राष्ट्र पुरुषों से अपनी स्फूर्ति ग्रहण करती थी तथा उसी आन्दोलन का अंग थी जिसने अंग्रेजों को, बार २ सतह पर आकर डुलाने की चेष्टा की और जो विफल होने पर भूमिस्त होकर बहने लगी थीं। इसका तारतम्य अतीत से जुड़ा हुआ था।

इसके अन्तर्गत "नया राष्ट्र" बनाने या राष्ट्रीयता की नई परिभाषा बताने, की बातें न थीं और न थी बलिदानों का मूल्य पाने की आकांक्षा। नेता बनने या थैली बटोरने की मनोवृत्ति को भी उसमें स्थान न था। इसमें थी केवल भारत को विदेशियों के हाथ से छुड़ाने की उत्कट अभिलाषा और इसी एक उद्देश्य के निमित्त हंसते २ जीवन दीप बुझाने के दिव्य उदाहरण। राष्ट्रीयता की अग्नि से अपने को जलाते हुए हुतात्मा उल्का की भांति अचानक सतह पर आते और अंग्रेजी दमन में पिस कर केवल अपनी स्मृति छोड़कर उतनी ही शीघ्रता से चले जाते। यह क्रान्तिकारी आन्दोलन था जो कांग्रेस से सर्वदा भिन्न था और हिन्दू राष्ट्र द्वारा युग २ में लड़े गये स्वतंत्रता संग्रामों का स्वाभाविक रूप था। हिन्सा अहिन्सा की परिभाषा के चक्कर में पड़ कर चाहे कोई इस आन्दोलन से मतभेद रक्खे परन्तु अपने उत्कट देश प्रेम और पावन आत्म-त्याग के कारण यह चिनगारियां भारतीय इतहास में तेजस्वी नक्षत्र बन कर सदैव चमकेगीं इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। स्वतंत्र वीर सावरकर, देश भक्त लाला हरदयाल, मदनलाल धींगड़ा, चापेकर बन्धु, भगतसिंह, राजगुरु सुखदेव, खुदीराम बोस, सभी ने राष्ट्र अग्नि में अपने को होम कर राष्ट्र की चेतना एवं विदेशियों के विरुद्ध घृणा को उसी भांति जीवित रक्खा जैसे महारानी पद्मिनी, रानी दुर्गावती, हकीकत-राय, गुरु तेगबहादुर, बन्दा वैरागी, गुरु पुत्रों तथा अगणित राष्ट्र वीरों और वीराङ्गनाओं ने मुसलमानी काल में अपने को

होम कर राष्ट्रीय चेतना को मिटने से रोका था। यदि दोनों आन्दोलनों में कुछ समानता थी तो केवल यह कि इन दोनों को हिन्दुओं ने ही लड़ा। फांसी के तख्ते पर कौन झूला? अन्दमान की काल कोठरियों में किसने तपस्या की? किसकी छातियों में गोलियां छेदी गईं? यह सब हिन्दू ही तो थे। अंग्रेजी साम्राज्य की मांद में घुस कर स्वतन्त्रता के लिये लड़ने वाला मदनलाल धींगड़ा गीता के श्लोक पढ़ता हुआ फांसी पर चढ़ा और भगतसिंह ने "जिस रंग को पहिन शिवा ने मां का बन्धन खोला" के गाने में शिवाजी को आदर्श मान अपने को राष्ट्र पर उत्सर्ग कर दिया। लाला हरदयाल, चापेकर बन्धु और रानाडे के रोम-रोम २ में हिन्दुत्व था। वीर सावरकर हिन्दूराष्ट्र के प्रणेता बन कर ही देश के सामने हैं और राशबिहारी बोस का सिद्धान्त ही था कि "देश को स्वतंत्र करने का एक मात्र मार्ग हिन्दू संगठन है।" कांगरेस को भी हिन्दुओं ने ही बलशाली बनाया। उनकी पैनी दृष्टि से कांगरेस का वास्तविक रूप भी छिपा न रह सका और उन्होंने अंग्रेजों के इस मायाजाल में घुस कर उसके रूप को ही बदल देने की चेष्टा की और इसके आधार को भारतीय बना कर उसे भारत के गौरवमय अतीत के साथ सम्बन्धित करने का प्रयास किया। लोक मान्य तिलक के गणपति उत्सव तथा महामना मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्द तथा शेरे पंजाब लाला लाजपतराय के हिन्दू संगठन आन्दोलन का यही रहस्य एवं उद्देश्य था। कुछ समय तक ऐसा प्रतीत हुआ

कि अंग्रेजी मायाजाल पूर्णतया छिन्न भिन्न होजायगा और कांग्रेस पाश्चात्य सभ्यता के आधार को छोड़ कर भारत के अतीत की सुदृढ़ नींव को पकड़ लेगी परन्तु अन्त में उनका प्रयत्न विफल हुआ। भारतीयता के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने के लिये कांग्रेस के साथ पूर्ण साम्प्रदायिक व अभारतीय "खिलाफत आन्दोलन" को बांध दिया गया और उसके बाद "हिन्दू मुस्लिम" ऐकता के नाम पर अंगरेज मुस्लिम षड़यंत्र ने कांगरेस को इस तरह जकड़ लिया कि वह आंख बन्द करके मुस्लिम तुष्टीकरण के ढाल पर फिसलती ही गई और यहां तक फिसली कि वह मुसलमान, जो भारत में आक्रमणकारी के रूप में घुसे थे और जो स्वतंत्रता संग्राम से सदैव अलग ही नहीं रहे बल्कि राहु और केतु बनकर उसके मार्ग में बाधक बने, वह तो राष्ट्र और राज्य दोनों के अधिकारी बन बैठे परन्तु हिन्दू, जो भारत का अभिन्न अंग है और जिसके घर के रूप में ही (हिन्दुस्थान) यह भूखंड दूसरों को विदित है, वह राष्ट्रीयता के उच्च पद से गिर कर तुच्छ न छूने योग्य एवं सभी बुराइयों का घर सम्प्रदाय बन गया।

यह दोनों आन्दोलन एक दूसरे से सर्वथा अलग थे। और इस काल में जो बलिदान हुये भी उसका श्रेय इसी क्रान्तिकारी आन्दोलन को है। उसके सामने कांग्रेस के त्याग नगण्य हैं फिर भी चूंकि कांग्रेस के पास अंगरेजों तथा भारत के पूंजीपतियों का वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित प्रचार का साधन उपलब्ध था अतः क्रान्तिकारी आन्दोलन या हिन्दूराष्ट्रवादी आन्दोलन के वास्तविक

रूप को जनता के सामने कभी नही आने दिया गया। उसको तो भूमित करने के कांगरेसी आन्दोलनों के साथ मुस्लिमलीग को अत्यधिक महत्व दिया गया। सच्चाई तो यहां तक है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन को समूल नाश करने में कांगरेस ने अंगरेजों का सदैव साथ दिया परन्तु उसके बलिदानों को अपना बताकर उसका लाभ स्वयं उठाया। अंगरेजी दमन, कांगरेस का विरोधी प्रचार, एवं मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्रहार सभी को हिन्दूराष्ट्र के स्वाभाविक विस्फोट को दबाने के लिये उपयुक्त किया गया परन्तु उसका वेग अछूता रह कर निरन्तर बढ़ता ही गया। १६४२ का आन्दोलन इसी भूमि के नीचे बहती भारतीय राष्ट्रीयता का उबाल था। चाहे कांगरेसी प्रचारक उसे आज अपना बतावें परन्तु सत्य यही है कि इस विस्फोट से कांगरेसी उच्च सत्ता भी आश्चर्य चकित एवं हतप्रभ होगई थी और सभी ने अपने वक्तव्य देकर अपने को इससे असम्बन्धित ही नहीं कर लिया था बल्कि इसकी निन्दा करके इस पर धूल फैंकी थी। इसका समस्त बोझ दमन, सामूहिक जुर्माने, गोली, फांसी आदि सभी कुछ हिन्दुओं के ही कन्धों पर पड़ा था। इसमें न अहिन्सा थी और न समझौते की बातें यह तो जन क्रान्ति थी जिसमें भारत का कण २ ज्वालामुखी बन कर अंगरेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये धधक उठा था। थोड़े दिन बाद ही पुलिस विद्रोह तथा जहाजी सैनिकों के विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया कि अंगरेजी साम्राज्य की नींव भारतीय राष्ट्रीयता की भूमिगत लहर द्वारा चाटी जा चुकी है

और उनकी अन्तिम रक्षा पंक्ति अर्थात् राष्ट्रीयता भी चूर २ होने को है। उधर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के भारी दबाव से साम्राज्यवाद की इमारत का ऊपरी भाग भी चरमरा गया और उसमें स्थान २ पर दरारें पड़ गईं। ऐसा जीर्ण शीर्ण ढांचा जो किसी भी क्षण बैठ सकता हो ठहरने या रहने के लिये उपयुक्त स्थान नहीं होता विशेष कर तब जब उस पर बाहर या भीतर दोनों तरफ से तीव्र आघात होरहे हों। अंगरेज मुगलों से अधिक बुद्धिमान थे इसके पहिले कि वह टुकड़े २ होकर बिखर जाता उन्होंने उसे छोड़ दिया। किन्तु जाते जाते २ अंगरेज भारत पर तीव्र आघात करते गये। उन्होंने भारत के हृदय में पाकिस्तान के रूप में एक ऐसा शूल गाड़ दिया जो भारत की स्वतंत्रता और स्वरक्षा दोनों को संकट-ग्रस्त बनाये रक्खे और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के अनुकूल होने पर यदि वह कभी लौटना चाहें तो इसी पाकिस्तानी खिड़की द्वारा राष्ट्र दुर्ग में उसी भांति प्रवेश कर सकें जैसे प्रारम्भ में हिन्दुओं से डरे हुये मुस्लिम नवाबों के सहारे से भारत में वह घुसे तथा उनकी ही सहयता से यहां इतने समय तक टिक सके थे। परन्तु समस्या तो यह थी कि अंगरेजों के बिना सहारे के पाकिस्तान अधिक समय तक खड़ा कैसे रहे ? और यदि हिन्दू शक्ति का पुनरुत्थान हुआ तो वह उसे खड़ा भी कैसे रहने देगी ? क्योंकि सिन्धु नदी से लेकर सिन्धु (समुद्र) तक का प्रदेश तो हिन्दू की पवित्र भूमि और मातृभूमि दोनों है। वह उसके किसी भी भाग में विदेशी संस्कृति का कैसा भी चिन्ह

सहन नहीं कर सकता। यह भी निश्चित था कि जिस राष्ट्रीयता के वज्र प्रहार से औरंगजेबी साम्राज्य चूर २ होकर धूल कणों में मिल गया उसकी चोट से पाकिस्तान के तो चिन्ह भी ढूंढ़ने से न मिलेंगे। ऐसी स्थित में पाकिस्तान की रक्षा का यदि कोई उपाय अंगरेजों की समझ में आया तो वह केवल यही कि शेष भारत में हिन्दुत्व के पुनुरुत्थान पर हर संभव उपाय से अंकुश रख कर उसे रोका जावे और यह उसी हालत में संभव था जबकि शेष भारत का शासन सूत्र ऐसे व्यक्तियों के हाथों में दिया जावे जो सभी कुछ हों परन्तु "हिन्दू न हों" और हिन्दू शब्द से उसी प्रकार विचकें जैसे कुत्ते का काटा पानी देखकर विचकता है। लार्ड मैकाले की कृपा और मि० ह्यूम के सद्प्रयत्नों से भारत में ऐसे व्यक्तियों की कमी भी न थी जो सभ्यता में अंगरेज, संस्कृति से मुसलमान और केवल आकस्मिक रूप से हिन्दू थे और जो मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति को ही राष्ट्रीयता मान बैठे थे तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बलशाली बना कर पाकिस्तान के रूप में पहुँचाने में जिनका अंगरेजों से अधिक हाथ था। ऐसे ही व्यक्तियों के हाथों में अंगरेजों ने शेष भारत का राजदंड थमा दिया और अंगरेजी शब्दकोष में काई खाता हुआ एवं उपेक्षित बहुत काल से एक शब्द "सेकुलर" पड़ा था उसको लाकर उनके हाथों में थमा दिया जो न केवल हिन्दूराष्ट्र के लिये अंकुश रूप में प्रयुक्त किया गया बल्कि जिसका उपयोग हुआ सड़ी गली मुस्लिम पक्षपात की नीति को नये ढंग पर

सजाने में भी। पाकिस्तान, मुस्लिम लीग का ही तो रूपान्तर है और शेष भारत में कांगरेस शासनारूढ़ है, फिर यदि वही पुराने ढंग पर एक का रूठना, झोली खोलना और उसका ठोकर मारना तथा दूसरे का मनाना, आंखबन्द कर खुली झोली में सभी कुछ भर देना और ठोकर को प्यार का चिन्ह समझ उसे अहोभाग्य मान कर प्रसन्न होना, भारत और पाकिस्तान के बीच चालू है तो कौनसा आश्चर्य! कांगरेस और मुस्लिमलीग के बीच होने वाले समझौते, एक का उन्हें पालन करना और दूसरे का उससे लाभ तो उठा लेना और फिर स्याही सूखने के पहिले ही तोड़ देना--बार २ संयुक्त वक्तव्य, शान्ति की अपीलें और हिन्दू मुस्लिम ऐकता की मृगमरीचिका के पीछे भागने का पागलपन, "हम मुस्लिम लीग से बात भी न करेंगे" कहना-फिर सभी कुछ भूल कर उसीके दर्वाजे पर जा पहुँचना और वेशर्मी के साथ घुटने टेक देना यह जनता को भूला न होगा। वही सब, वैसाही समझौतों का तारतम्य, पैक्टों की न टूटने वाली शृङ्खला और कभी जिनका अंत न हो ऐसी वात चीतों का क्रम भारत और पाकिस्तान में आज भी चालू है और उसी तरह चालू है--एक की उद्धत एवं लुटेरी मनोवृत्ति, दुर्भावना एवं शत्रुतापूर्ण व्यवहार और दूसरे की कमजोर, दब्बू एवं अस्थिर नीति। "पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया नहीं दिया जायगा" नेता बोले, "काश्मीर से जब तक एक २ आक्रमणकारी बाहर न खदेड़ दिया जायगा तब तक युद्ध चालू रहेगा" उन्हीं नेता ने जोश दिखाया

"यदि पाकिस्तान ने हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार बन्द न किया और साम्प्रदायक अशान्ति को न रोका तो हम कड़ी कार्यवाही करेंगे" नेता की दृढ़ता को देख कर जनता फूल उठी "पाकिस्तान के रुपये की दर कभी स्वीकार न होगी" फिर नेता उवाच हुआ। परन्तु प्रत्येक वार शब्दों की प्रतिध्वनि भी बन्द होने के पहिले पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये दे दिये गये, आधा काश्मीर लुटेरों के हाथ में छोड़ कर युद्ध बन्द होगया "कड़ी कार्यवाही के स्थान पर पाकिस्तान के टूटते हुये आर्थिक ढांचे को "नेहरू लियाकत पैक्ट ने गिरने से बचा लिया" और पाकिस्तानी रुपये की दर जिसमें भारत के रुपये का मूल्य पाकिस्तान में दस आना रह गया और पाकिस्तानी रुपये को दर भारत में बढ़ गई उसे भी शिर झुका कर स्वीकार कर लिया गया। पहिले मुस्लिम लीग की प्रसन्नता के लिये हिन्दू हितों का बलिदान होता था और अब पाकिस्तान की प्रसन्नता के लिये राष्ट्र हितों का होम होने लगा।

स्वतंत्रा मिली है ऐसा जान कर हिन्दू ने संतोष की श्वांस ली थी। उसने समझा था कि अब उसके बलिदानों का फल उसे मिलेगा, धन-सम्पदा या चोरबाजारी के रूप में नहीं, बल्कि इस रुप में कि वह भारत को, अपने महान पूर्वजों के बताये मार्ग पर ले जाने तथा उन्हीं के अनुकूल उसका नव-निर्माण करने को, स्वतंत्र होगा। वह क्षण भर को भूलगया फांसी के तख्तों को, अन्दमान के कारागारों में तिल २ कर मरने के दृश्य

को, जेलों में कोड़ों की मार को और भूल गया सड़कों पर पेट के बल रेंगाये जाने के दृश्य को। उसने समझा कि जब मुसलमान को बिना लड़े, बिना बलिदान किये, राष्ट्रभक्ति के फल स्वरूप नहीं बल्कि राष्ट्रद्रोहता के पुरस्कार में एक अलग स्वतंत्र राज्य मिल गया जहां वह अरबी तुर्की या अन्य सभी तरह की अभारतीय संस्कृति सभ्यता एवं भाषा को पनपाने को पूर्ण स्वच्छन्द होंगे, तो उसे जिसने अपूर्व बलिदान व राष्ट्रभक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन किया है, भारत की भूमि में अपने को पूर्ण भारतीय बनाने की तो स्वतंत्रता मिलेगी ही। भावावेश में उसने आंखें बन्द करलीं और कल्पना में उसने देखा "भारत में रामराज्य की स्थापना होगई है" राष्ट्र के लक्ष २ वर्ष का गौरवमय श्रोतत जिसका श्रोत बहुत नीचे पाताल में चमकता हुआ बह रहा था वह अगणित श्रोतों में भारत भर में फूट कर सुख और समृद्धि को बिखेरता हुआ बह रहा है, समूचा राष्ट्र एक मन और एक प्राण होकर दासता के अन्तिम चिन्ह को मिटा कर स्वतंत्रता की अडिग नींव बनाने में जुटा पड़ा है और स्थान २ पर भारत के अपने युग पुरुषों की प्रस्तर प्रतिमाऐं खड़ी की जा रहीं हैं, जिससे उनके पुनीत आदर्शों को देश कभी न भूले और अपने को उन्हीं के अनुरूप ढाले। हिन्दू की गाय अवध्य बना दी गई है और हिन्दू का धर्म राज्यधर्म के पद पर प्रतिष्ठित होगया है। अन्न, वस्त्र तथा सभी वस्तुओं की प्रचुरता, समानता स्वतंत्रता और भ्रातृभाव, वीरता, धीरता और गम्भीरता यही तो रामराज्य की विशेषतायें थीं।

और इन्हीं को फिर से हिन्दू ने अपने भारत में देखा। "एक सीता के कारण रावण के साम्राज्य को धूल में मिला दिया गया था। और एक द्रोपदी के शील की रक्षा के लिये महाभारत का युद्ध रचा गया था" हिन्दू के कानों में गम्भीर घोष सुनाई पड़ा और उसने कल्पना में भगवान राम के नेतृत्व में लक्ष २ हिन्दुओं को क्रोध से फुंकारते लंका की ओर बढ़ते देखा और देखा उन्हें सुनहली लंका को जलाकर क्षार २ करते। क्षण भर को महाभारत का दृश्य भी उसके सामने आगया जहां अपने ही बन्धुओं की हत्या में रत उसने अर्जुन को देखा और उसने देखा यादव-कुल को विध्वंश कराते कृष्ण को भी। उसने सोचा "ऐसी भारतीय नारी की प्रतिष्ठा है। स्वतंत्र भारत में हिन्दू नारी की रक्षा के लिये अर्जुन और राम का कोप पुनः साकार हो उठेगा। अब कौन है जो हिन्दू नारी को बुरी दृष्टि से देखने या उसे अपमानित करने का साहस करे ?।" दृश्य बदला कानों में सुनाई पड़ा "हिन्दू तब तक शान्त नहीं बैठता जब तक भारत का एक कण भी विदेशियों के द्वारा पददलित होता रहता है" और उसी के साथ आगया उसके सामने ग्रीकों का मथन, शकों का नाश और हूणों का चीरा जाना। भवानी को हाथ में लिये क्षत्रपति भी उसे दिखलाई पड़े और दिखलाई दिये लोह घन द्वारा मुगल सिंहासन को चूर २ करते सदाशिवराव भाऊ। हिन्दू के मुंह से निकल पड़ा "हिन्दू" शक्ति हीन नहीं, हिन्दू तो शौर्य की साक्षात् रूप है और तभी उसने सुना, मानो अन्तरिक्ष को चीर कर ही ध्वनि आ

रही हो "यह भी ध्यान रहे हिन्दू खंडित प्रतिमा को कभी नहीं पूजता" और उसने देखा उमड़ते हुये हिन्दू समुद्र को जो पूर्व और पश्चिम की ओर राष्ट्रप्रतिमा के टूटे अंगों को जोड़ने के लिये उद्वेलित हो उठा था। हर्षातिरेक से उसकी आंखें खुल गईं और तभी उसकी मोहनिद्रा भी टूटी, उसने देखा कि कल्पना के भारत और अब के भारत में आकाश और पाताल का अन्तर है। यह राम कृष्ण व विक्रमादित्यों का भारत नहीं बल्कि "सेकुलर" भारत है जो आज भी हिन्दू का अपना घर न होकर धर्मशाला बना हुआ है। जहां अतीत के गौरव की बातें, रामराज्य की कल्पना, शिवाजी और विक्रमादित्यों का आदर्श, "साम्प्रदायिकता" की परिभाषा में आता है और ऐसी "साम्प्रदायिकता" किसी तरह भी सहन नहीं की जासकती है। उनके स्थान पर बौने, अस्पष्ट अभारतीय आदर्श ढूंढ़ निकाले गये हैं और उनको ही राष्ट्रीय मान कर देश के ऊपर जबरदस्ती लादा जा रहा है। इस भारत में हिन्दू नारी पर कुदृष्टि करने पर "लंका दहन" या "महाभारत" के उदाहरण तो दूर की बात गुन्डों को दंडित करना भी ठीक नहीं माना जाता। नारी अपहरण, बलात्कार, अपनेही राष्ट्रबन्धुओं का वध, धर्म परिवर्तन आदि अमानुशिक कृत्य करने पर भी युद्ध तो त्याज्य है ही, सद्भावना समझौता, या उनसे "मित्र" बन जाने की प्रार्थना करना अधिक श्रेयस्कर व उचित मार्ग है। उसने देखा काश्मीर की भूमि पर मौत, बर्बादी व विध्वंश बरसाने वाला पाकिस्तान, सहस्र और लक्ष भारतीय नारियों के सुहाग और

शील से खेल करने वाला पाकिस्तान, और निरंतर युद्ध की धमकी देने वाला पाकिस्तान और उसीके साथ देखा दुबका हुआ, बार २ झुकता हुआ, और अपने नागरिकों में पाकिस्तान के प्रति प्रेम और सद्भावना उत्पन्न करने के लिये आज्ञापत्र प्रचारित करता हुआ भारत। जब कि पाकिस्तान में उसके नेता तलवार खड़खड़ा रहे हों, जब कि वह युद्ध की स्पष्ट धमकी देने में लगा हो उस समय मौलाना आजाद द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों के नाम यह आज्ञापत्र कि पाकिस्तान के प्रति हर संभव उपाय से सद्भावना व प्रेम उत्पन्न किया जावे, हिन्दू के हृदय में शूल बनकर चुभ गया। उसने सोचा क्या यह वही भारत है जिसने नाग और शर्प जातियों के राजा तक्षक द्वारा धोखे से परीक्षित की हत्या का बदला नाग और सर्प जातियों को सामूहिक रूप से अग्नि कुन्डो में झौंक कर लिया था, जिसने नारी को कुदृष्टि से देखने पर अपने ही सम्राट सहस्रार्जुन की हजार भुजाओं को काट कर अपना प्रतिशोध चुकाया था और जिसकी प्रतिहिन्सा कैसी होती है यह जानने के लिये कोई कहानी पढ़े सम्राट सगर के साठ हजार पुत्रों की जो अपने उद्धता के कारण महर्षि कपिल की क्रोधाग्नि में जल कर भस्म होगये थे। उसकी समझ में न आया यह कौन से देश का, और किस युग का आदर्ष है जो आज का भारत अपना रहा है? अपने घर में, अपने ही बन्धुओं के लियं, हिन्दूराष्ट्र के विरुद्ध जो सभी प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करने को सदैव तत्पर रहते हैं "हिन्दूराष्ट्र" के लिये "कुचलने" से कम शब्द

जिनके शब्दकोष में नहीं हैं और जो "हिन्दूधर्म की आधार भूत जड़ों को एकही झटके से उखाड़ डालने को कटिबद्ध है वही "पाकिस्तान" के प्रति जिसकी नींव ही साम्प्रदायिकता एवं घृणा पर बनी है और जो साम्प्रदायिकता और घृणा पर ही पनप रहा है, मोम की तरह क्यों पिघल जाते हैं ? उसके प्रति इतनी दया, ममता और प्रेम के पीछे क्या रहस्य छिपा है, वह भी हिन्दू न जान सका। फिर हिन्दू ने देखा हिन्दू कोडबिल के द्वारा हिन्दू धर्म और समाज को खंड २ करने का प्रयत्न, तलाक बिल द्वारा हिन्दू नारी को सीता, सावित्री और पद्ममिनी के उच्च आदर्ष से नीचे गिरा कर "कुलटा और 'तितली' की श्रेणी में लाने की कुचेष्टा और उसने देखा इनका विरोध करने वाले स्त्री बच्चों के समूह पर लाठियों की वर्षा और ठोकरों की मार। साधु-महात्माओं को भी उसने जेलों में बन्द होते देखा "धर्म की जय हो" "गौवध बन्द हो" कहने पर उसने उन पर बन्दूक के कुन्दों की मार के दृश्य भी देखे और देखा मन्दिरों की सम्पत्ति का अपहरण और उनकी मर्यादा का अतिक्रमण! तो क्या अहिन्सा का आवरण भी दिखावटी है "और क्या इसका उपयोग भी राष्ट्र के युग २ के शौर्य को दबाने तथा आततायियों एवं राष्ट्र द्रोहियों को प्रश्रय देने में ही होरहा है?" उसने सोचा! हिन्दू का हृदय तिलमिला उठा जब उसकी दृष्टि राम और कृष्ण के जन्म स्थानों पर पड़ी। जिन्होंने भारत को कठोरतम दासता के चंगुल से छुड़ाकर स्वतंत्र किया था जिनके नाम को लेना और

जिनके स्मरण मात्र को करोड़ों भारतीय जन परम पवित्र मानते हैं उन्हीं के जन्म स्थानों की यह दुर्दशा ! धर्मान्ध विदेशी शासकों ने राष्ट्र का अपमान करने के लिये राष्ट्र पुरुषों के पवित्र स्मृति चिन्हों को नष्ट भ्रष्ट किया था और इसी राष्ट्रीय अपमान एवं विदेशी महत्ता को चिरस्थाई बनाने के लिये उनका स्वरूप बदला। स्वतन्त्र भारत में भी उनका उद्धार न हो और उनको वैसाही रखने का प्रयत्न हो ऐसा तो कहीं भी देखने में नहीं आया। यदि कोई अपने घर को किसी चोर व डाकू के चंगुल से छुड़ावे और फिर उसमें जमा किया हुआ कूडे का ढेर और गंदगी को हटा कर उसे स्वच्छ और सुन्दर बनाना चाहे तो क्या यह भी "साम्प्रदायिकता" कही जायगी ? क्या दासता काल की गन्दगी को सजा कर रखना ही राष्ट्रीयता है ? भाषा सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में भी ऐसा ही मतिभ्रम दिखलाई पड़ा। जो शुद्ध भारतीय था वह सभी साम्प्रदायक, संकुचित, ओछापन, और छोटी बातें बन गया और जो विदेशी था चाहे उसका मुसलमान आक्रान्ताओं का मंगोल या फारसी रूप हो या अंग्रेज शासकों का पाश्चात्य प्रभाव हो वह सभी राष्ट्रीय। उदार और प्रगतशीलता, बन कर सामने आगया। "टका सेर भाजी और टका सेर खाजा" वाली अन्धेर नगरी से भी विचत्र दशा हुई भारत की, जहां हंस के साथ कौवा और घोड़े के साथ गधा जोड़ना तथा उनकी बोलियां मिलाकर बीच की बोली बनाने की चेष्टा, राष्ट्रीयता की परिभाषा में आगया और इन भिन्न २ जातियों

को अपने प्राकृतिक रूप में रखना "साम्प्रदायिक" कहा जाने लगा। परन्तु सबसे विचित्र बात यह थी कि यह 'राष्ट्रीयता' और साम्प्रदायिकता अहिन्सा और हिन्सा संकुचित अथवा उदार दृष्टिकोण सभी को हिन्दुओं पर ही लागू किया गया। "अहिन्दू" इस परिभाषा से पूर्णतया मुक्तकर दिये गये। "तो क्या हिन्दू स्वतन्त्र हुआ? क्या उसे धोखा दिया गया और क्या स्वतन्त्रता संग्राम अबभी अधूरा है?" आदि प्रश्न हिन्दू के मस्तिष्क में एक साथ उठे और उनका उत्तर भी उसे स्पष्ट "नहीं में मिला। हिन्दू यवन में बन्दी था उसे हाथियों के पैरों से कुचला गया, शूली पर चढ़ाया गया, और मस्जिदों की नींवों में डुलाकर उस की हड्डियों पर पूजा ग्रह नहीं, वलिक राष्ट्रीय अपमान के स्मारक खड़े किये गये- अंग्रेजी काल में भी हिन्दू ही वन्दी रहा, उसे संगीनों से छेदा गया, गोलियों से भेदा गया और उसे ही विद्रोही मान कर अंग्रेज ने अपने दमन का लक्ष्य वनाया, पर जब अपने हड्डियों का वज्र बनाकर हिन्दू ने इन दोनों विदेशी ढांचों को धराशाही कर दिया फिर भी उसने अपने को बन्दी ही पाया। शासन सत्ता धोखे से-या हिन्दू की नादानी से ऐसे हाथोंमें पहूंचगई जिन्होंने हिंदू कोही अपना सबसे बड़ा शत्रु समझा और मुसलमान व अंग्रेजों द्वारा छोड़ा गया, अधूरा कार्य पूरा करने में लग गये। हिन्दू को भी अपने अधूरे स्वतन्त्रता संग्राम को पूरा करना है जो उसी समय होगा जब हिमालय से अन्तरीप पर्यन्त भूमि पर हिन्दू राष्ट्र की स्थापना होगी।

"हिन्दू राष्ट्र" की कल्पना का आधार साम्प्रदायक अथवा संकुचित न होकर-पूर्णतया राष्ट्रीयहै। इसका अर्थ किसी विशिष्ट धर्म या सम्प्रदाय का राज्य नहीं वल्कि भारतीय संस्कृति पर आधारित सच्चा जनतंत्रीय राज्य है जिसमें धर्म के आधार पर न तो कोई अल्पसंख्यक होगा और न बहुसंख्यक, और न धर्म के आधार पर किसी को विशेषाधिकार या संरक्षण ही पाने का अधिकार होगा। जहां सेकुलर वादियों के मस्तिष्क में सबसे भ्रामक विचार यह है कि अलग २ धर्म या मत मतान्तरों की संस्कृति व सभ्यता भी अलग २ है और इसी भ्रम में पड़ कर यह लोग भारत की संस्कृति-सभ्यता व मनोभावना, सनातन-धर्मियों, या आर्यसमाजियों की मानकर, और अरव, तुर्की व फारस की विदेशी सस्कृति-मुसलमानों की मानकर - उसका समन्वय करके एक नवीन राष्ट्र बनाने के प्रयत्न में लगे हैं, वहां हिन्दू राष्ट्र के सिद्धांत में इस भ्रम को कोई स्थान नहीं। उसका निश्चित मत है कि धर्म परिवर्तन कर देने पर नस्ल या राष्ट्र का परिवर्तन नहीं हो जाता। एक सनातनी अपने धर्म में परिवर्तन करके, मुसलमान व ईसाई बन सकता है परन्तु वह अपनी नस्ल बदलकर उसे अरवी व तुर्की अथवा अंग्रेज या जर्मनी नहीं वना सकता और न अपने पूर्वजों में परिवर्तन ही कर सकता है ? एक "रामदयाल" का लड़का चाहे सनातनी रहे, या आर्यसमाजी–अथवा वह मुसलमान व ईसाई हो जावे हर हालत में रामदयाल का ही लड़का रहेगा–मुसलमान या

ईसाई होकर व जैसे इङ्गलैंड के लाइड-जार्ज यथवा तुर्की के इस्माइल का पुत्र नहीं बन सकता, उसी भांति भारत में जो मुसलमान हैं वह सब नस्ल व राष्ट्र रूप में तो हिन्दू ही हैं। परन्तु उनका धर्म परिवर्तन स्वेच्छित अथवा आत्मा की प्रेरणा से न होकर विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा-राजनैतिक कारणों से किया गया। मुसलमान आक्रमणकारी बहुत थोड़ी संख्यामें आयेथे और अपने शासन को साधने के लिये उन्हें संख्या बढ़ाने की आवश्यकता पड़ी, और उन्होंने धर्म परिवर्तन का आश्रय लेकर ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ानी चाहीं जो उनके विदेशी शासन के स्तंभ बने, और जो अपने भाग्य को विदेशी शासनके साथ ही बंधा समझे। इसीलिये उन्होंने धर्म परिवर्तन के साथ उनमें कुछ ऐसे ऐतिहासिक-सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन कर दिये जिसमें वह हिन्दुओं से सर्वथा भिन्न हो गये। वह नस्ल में हिन्दू अवश्य रहे परन्तु चूंकि उन्होंने विदेशियों की भाषा, उनके रीत रिवाज, उनकी राष्ट्र के प्रति शत्रु भावना-को भी अपना लिया और विदेशी भाषा-लिपि एवं विदेशी नामों को रखने में गौरव अनुभव करने लगे—अतः वह राष्ट्रीयता के अधिकार से च्युत हो गये। जहां सेकुलरवादी नेता, इस अभ्रष्ट राष्ट्रके अङ्गोंमें विदेशी तत्वों को जीवित रहने देना चाहते हैं जो राष्ट्र की सुरक्षा एवं राष्ट्रीय ऐकता में बाधक है वहां हिन्दू राष्ट्रवाद इन तत्वों को सर्वथा हटाकर उन्हें अपने पूर्वके राष्ट्रीय रूप में लाने में विश्वास करता है जिससे राष्ट्र का ढांचा कहीं ईंट व कहीं

का रोड़ा" के आधार पर-बनकर सदैव हिलता न रहे बल्कि एक रूप हो जावे जिसके एक भी कण को प्रचार, प्रलोभन, आकर्षण या आतंक द्वारा अलग न किया जा सके। यदि प्रारम्भ से इस सिद्धान्त पर चला जाता और मुसलमानों का हिन्दू राष्ट्र के सिद्धांत पर राष्ट्रीयकरण किया जाता और उनके अन्दर विदेशियों द्वारा पैदा किये गये अलगाव के सभी चिन्हों को मिटाया जाता तो वह अपने पूर्व रूप में आकर एक राष्ट्र के ही सुदृढ़ अङ्ग बन जाते और पाकिस्तान कभी न बनता, परन्तु राष्ट्रीयता के नाम पर अराष्ट्रीयता के तत्वों को निरन्तर बलवान बनाया गया, जिससे राष्ट्रीय ऐकता न होकर अलगाव ही पाकिस्तान के रूप में मूर्ति-मान बन गया। जैसे प्लेग के क्षेत्र से इसलिये सतर्क रहा जाता है कि उसकी छूत दूसरां में न फैले, इसी भांति पाकिस्तान की स्थापना के बाद भारत में शेष बचें, अहिन्दुओं के विषय में अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। यदि उनका राष्ट्रीयकरण न किया गया तो उनके अन्दर भी राष्ट्र विरोधी-शक्तियां को छूत फैलाने का अवसर मिलेगा-और वह राष्ट्र की सुरक्षा व ऐकता के लिये किसी भी समय नया खतरा बन सकते हैं। प्लेग की गिल्टी निकलने से यदि किसी के ऊपरी अङ्गों में थोड़ा सा परिवर्तन हो जावे तो क्या वह अलग राष्ट्र बन जायगा ? क्या उन गिल्टियों को वैसा ही बना रहने देना और छूत को फैलने देना-प्रगतशी-लता या उदार दृष्टिकोण है ? अथवा उन अपने ही बन्धुओं की बीमारी ठीक करके उन्हें पुनः अपना लेना उचित

मार्ग है। सेकुलरवाद या झूठी राष्ट्रीयता पहिले मार्ग को और हिन्दू राष्ट्र का सिद्धांत दूसरे मार्ग को ठीक मानता है। भारत में मुसलमान व इसाइयों को अलग इकाई मानना—या उन्हें अल्प-संख्यक मानना, अथवा उन्हें विदेशी समझना सभी गलत है। यह तो विदेशी दासता की देन हैं, और हैं राष्ट्रीय पराधीनता, और पराजय के स्मृति चिन्ह, जिनका स्वाभिमान और स्वरक्षा, दोनों दृष्टियों से स्वतन्त्र भारत में स्थान नहीं। अब स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि फिर इनका क्या किया जायगा ? क्या इनका सामूहिक वध किया जायगा, जैसे जर्मनी में यहूदियों का हुआ था, अथवा इनको सामूहिक रूप से देशके बाहर निकाला जायगा जैसे पाकिस्तान में हिन्दुओं के साथ किया गया। हिंदू राष्ट्रवाद में दोनों मार्गों को निसिद्ध माना है। इनका न तो सामूहिक वध होगा, और न सामूहिक निश्क्रमण। बल्कि होगा सामूहिक राष्ट्रीकरण। इन्हें, अपने ऊपर, कृत्रिम रूप से चढ़ाई गई विदेशी सभ्यता, संस्कृति एवं मनोभावना का परि-त्याग कर भारतीय संस्कृति, मनोभावना व सभ्यता को अपनाना होगा। इस तरह आज जो राष्ट्र का पथभ्रस्ट व रुग्ण अङ्ग है—और जो शत्रु के प्रलोभन, छल व प्रचार का सहज लक्ष्य है वही स्वस्थ और चेतन होकर राष्ट्र की शक्ति का साधन बन जायगा। यह कोई नयी कल्पना नहीं, बल्कि भारत का अपना आदि सिद्धांत है जिसने युग २ में राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन, संरक्षण और संवर्धन किया है। जिस राष्ट्रीकरण के द्वारा दैत्य, शक, और

हुए तथा अनेका-नेक अराष्ट्रीय तत्त्व हिन्दू के साथ एक रूप होकर हिन्दू के सुख और दुख, विजय और पराजय एवं-सौभाग्य और दुर्भाग्य के समान भागीदार बन गये, और जिन्हें न संरक्षण की आवश्यकता है और न सुरक्षा की, वैसे ही हिन्दू राष्ट्रवाद के प्राकृतिक प्रवाह में मुसलमान व ईसाई समस्या जो दिनों दिन उलझती जाती है, वह भी सदैव के लिये सुलझ जायगी ?

हिन्दू की इस असाधारण आत्मसात् या निगल जाने की शक्ति से संसार की सभी जातियां परिचित हो चुकी हैं। राष्ट्रीयताके इस अथाह एवं अनन्त सागर में कितनी ही जातियां आकर गिरीं, प्रत्येक ने उसे तैर कर पार करना चाहा पर थोड़े दिन हाथ पैर मार कर और थोड़ी दूर पहुँच कर, बिना ऊपरी चिन्ह छोड़े, सभी उसी में समा गईं। मुसलमान यदि बच सके तो केवल इसीलिये कि जब वह सतह के नीचे जाने को ही थे तभी अंग्रेजों ने आकर उन्हें सहारा दिया, और अंग्रेज स्वयं इसलिये बचे कि जैसेही हिन्दू समुद्र में तूफान एवं बड़वानल से उफान के चिन्ह प्रगट हुये वैसे ही खतरे को समझ कर, समय के रहते ही वह निकल कर भागे। अब सामने आये हैं कुछ नव-हिन्दू, नये उत्साह और नई कल्पना के साथ ! वह हिन्दुत्व के सीमाहीन सागर को उलीच कर उसे छोटे से तालाब में बदलना चाहते हैं जिसमें सभी जातियों के लोग क्रीड़ा कर सकें। वह राष्ट्रीयता से उबलते हुये प्राकृतिक अग्नि-कुण्ड की समस्त आग निकाल कर उसे अंग्रेजी ढंग की

अंगीठी या मुसलमानी ढंग का चूल्हा बनाना चाहते हैं जिसमें गुसल या हम्माम का पानी गरम किया जावे। वह नहीं जानते कि समुद्र उलीचा नहीं जाता, और न ज्वालामुखी की अग्नि को कम किया जा सकता है। जैसे यह दोनों कार्य असम्भव और खतरनाक हैं उससे भी अधिक असम्भव और भयावह है हिन्दू के घर हिन्दुस्थान में हिन्दू चेतनाको दबा रखना या उस को हटाकर समन्वय या मिली जुली संस्कृति के सिद्धांतपर नये राष्ट्र या राष्ट्री-यता को थोपने की चेष्टा करना। "हिन्दू राष्ट्रकी कभी स्थापना न होगी" "उसे कुचल कर रख दिया जायगा" आदि घोषणायें, दमन और झूठे प्रचार द्वारा हिन्दू को आतंकित अथवा भ्रमित करने की समस्त चेष्टायें और हिन्दू की आधारभूत जड़ों पर आघात कर उसे ध्वस्त करने की समस्त योजनायें उसी प्रकार व्यर्थ सिद्ध होंगी जैसे प्राचीन काल में हो चुकी है।

हिन्दू अजर है। वह अमर है, और है हिन्दुस्थान में सना-तन से। पृथु के रूप में उसने पृथ्वी को दुहा, उसने ही अनन्त सागर का मथन किया, और जब उसने उसे अपनी अवहेलना करते देखा तो हिन्दू ने ही अगस्त बनकर उसका आचमन किया और राम बनकर बांधा और प्रताड़ित भी किया। भागीरथ बनकर उसी ने गंगा को उतारा, भगवान शंकर के रूप में उसने ही अखंड भारत की सीमायें बांधी-और यह भी हिन्दू ही है जिसने सूर्य से भी अधिक तेजस्वी रूप धारण कर इन सीमाओं की रक्षा की। काली पत्थर की चट्टान-जैसे ऊपर से शीतल होती है-

परन्तु यदि उस पर लोहे से आघात किया जावे तो शीलत्व को चीरती हुई उसमें से आग की चिनगारियां निकलती हैं। बस यही वास्तविक रूप है हिन्दू का भी। वह शांत है, गम्भीर है, परन्तु अपने भीतर छिपायेहै प्रतिशोध की अग्नि भी। वह भगवान भोलानाथ बनकर दूसरों को अमृत पिलाता परन्तु स्वयं विषपान करता है, भस्मासुरों को वरदान देकर बलशाली बनाता है परन्तु वही जब क्रोधित हो ताण्डव करता है तो फिर पहाड़ टूटते हैं पृथ्वी फटती है और अन्तरिक्ष भी प्रलयाग्नि से धधक कर जल उठता है। हिन्दू के अमरत्व का यही रहस्य है। उसको मिटाने की इच्छा रखने वाले मिट गये, उसे उखाड़ने की चेष्टा करने वाले स्वयं उखड़ गये, और जो कल्पना करते थे हिन्दू के नाश की, उनका कहीं चिन्ह भी शेष नहीं बचा। यही होगा उनका भी जो हिन्दू राष्ट्र को उखाड़ने या उसको मिटानेकी आज भी कल्पना कर रहे हैं। हिन्दू तब जीवित था, अब जीवित है, और आगे भी जीवित रहेगा क्योंकि वह है अमर···

★ समाप्त ★